* श्री: *

लेखिका—

श्रीमती प्रियम्बदा देवी।

प्रकाशक—

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय,

२।३, चित्तरञ्जन ऐवेन्यू (साउथ)

कलकत्ता।

प्रथम संस्करण] सन् १९३० [मूल्य २) रुपया

पहला परिच्छेद

आरम्भ।

हाँ, मैं विधवा थी; पर थी कुसुम-सी कोमल और सरोज-सी सुन्दर। मुझे अब तक याद है, बचपनकी मेरी मीठी-मीठी प्यारी बोली सुनकर मानो मेरे पिता-माता स्नेहसे गद-गद और आनन्दसे अधीर हो जाते थे। शायद इसी कारणसे उन्होंने मेरा नाम भी रख दिया था—'प्रियम्वदा।' हाँ, मैं वास्तवमें प्रियम्वदा थी। उत्पन्न तो हुई थी, मध्यम श्रेणी क्या बल्कि एक दरिद्र परिवारमें—उस परिवारमें, जो कठिनतासे अपना पेट पाल सकता था, जिसे रहनेके लिये अच्छे और सुसज्जित मकान तकका अभाव था, जो धनाभावके कारण ऐसे मुहल्लेमें बसा था, जिसमें केवल

भद्रपरिवारोंका ही वास नहीं था। पर न जाने कहाँसे, जंगली मनोहर फूलके समान, मेरे ऊपर रूपका बादल फट पड़ा था। ओह! इतना अपरूप रूप, इतना सौंदर्य! लोग कहते थे-ऐसा रूप, इतनी सुन्दरता, इतनी अंग-सुघराई अच्छे-अच्छे धनी परिवारोंमें भी नहीं दिखाई देती। हाय रूप! यदि आज यह रूप मुझमें न होता, तो शायद मैं कुछ दूसरी ही होती-मेरी जीवन-धारा सम्भव है, कि किसी दूसरी ही ओर बहती दिखाई देती।

पर काल-चक्रकी गतिको कौन जानता है? विधिके विधान को कौन समझ सकता है? किस उद्देश्यसे, किस समय, विधाता किसके द्वारा संसारका कौन सा कार्य संसाधित करना चाहता है, यह समझनेकी किसमें शक्ति है? कोई समझे या न समझे, पर इस संसारका कोई भी कार्य निरर्थक नहीं होता। ज़रा ध्यान दीजिये, दरिद्र परिवारमें जन्म, इस अलौकिक रूपकी प्राप्ति, पिता-माताका अनोखा लाड़-प्यार, धार्मिक शिक्षा दीक्षाका अभाव और सबसे बड़ी बात तो यह कि भाग्य फूटा! क्या इन सब कार्योंके भीतर कोई रहस्य नहीं है? क्या इनपर ध्यान देनेसे यह नहीं मालूम होता, कि परमात्मा मेरी जीवन-घटनाओं द्वारा संसारको कुछ दिखा देना चाहता था? क्या मेरा जीवन वास्तवमें उस जंगली फूलके समान ही समझा जा सकता है, जो एकान्तमें ही खिला, किसीकी दृष्टि पड़ी या न पड़ी, आप ही खिला, आप

दूसरा परिच्छेद
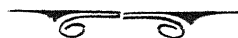
परिचय।

पहले ही कह चुकी हूं, कि मेरा नाम प्रियम्वदा था—अब कुछ दूसरा ही है। वह पीछे बताऊंगी। मेरे पिताका नाम मोतीलाल और माताका सुखदेई था। पिता-माताकी मैं बहुत ही लाड़ली थी। मेरे पिता मेरे रूपकी प्रशंसा करते और माता कहतीं कि मैं राज-रानी बनूंगी। हां, राज-रानी बनने योग्य और कोई शिक्षा मिली हो या न मिली हो, पर मैं हमेशा लाड़-प्यार और ठाट बाटमें मैं जरूरही रखी गयी थी। पिता थे तो पुराने विचारोंके, पर मेरे लिये, खासकर मेरी शिक्षाके सम्बन्धमें, उनकी धारणा बदली हुई थी। वे कहते थे, लड़कियोंको पढ़ाने लिखानेकी जरूरत है, साथ ही गाना-बजाना, गृहस्थीके काम जानना और अपने स्वाध्यको बनाये रखनेकी चेष्टा करना भी बहुत जरूरी है। इसीलिये शायद मुझे सितार बजाने और गानेकी शिक्षा दी गयी; एक पण्डित आकर नित्य पढ़ा भी जाते थे। गरीब घरकी सन्तान, घर गृहस्थीके कामका अभाव हो न था। पर एक बातका मुझे पूरा पूरा स्मरण है। पिता जो कुछ उपार्ज्जन कर लाते, उसका अधिकांश ठाट-बाट और गृहस्थीमें हो खर्च होता था; धर्मचर्चा

मेरे यहां बिल्कुल न थी। यदि कुछ थी भी तो नाम मात्र की।

मेरे दो बड़े भाई थे। एकका विवाह उसी समय हो चुका था, जब मैं सात वर्षकी थी और दूसरेके विवाहकी तैयारियां हो रही थीं। दोनों अपने अपने रंगमें मस्त थे। स्कूल तो जाते थे, पर बराबर शिकायत ही सुननेमें आती थी। पिता कुछ बिगड़ा झिड़का भी करते थे, मानो उनका आचरण उन्हें पसन्द न था। पर माता हमेशा उनका पक्ष लेकर पिता-को दबा दिया करती थीं, वे भी लाचार हो, चुप रह जाते थे। अतएव दोनों ही कुछ स्वतंत्र-से हो रहे थे।

हां, हमलोगोंको यह कभी न बताया गया कि धर्म किस चिड़ियाका नाम है तथा कर्त्तव्य और कर्म किसे कहते हैं। सीखा हमलोगोंने किसी तरह आरामसे और ठाट-बाटसे दिन काटना। इसके लिये चाहे पिताको कितनी भी तकलीफ उठाकर धन संग्रह करना पड़े। वे कभी बाज़ न आये। हम लोगोंको उन्होंने दुःखकी हवा न लगने दी और मेरे विषयमें तो कुछ कहनाही वृथा है, मैं तो उनकी आंखोंकी पुतली ही हो रही थी ; क्या मजाल जो मेरे शरीरपर ज़रासी मिट्टी या थोड़ीसी गन्दगी दिखाई दे जाय।

माता-पिताके इसी लाड़-प्यारसे जीवनके दस वर्ष किसी तरह बीत गये। कभी दुःखकी हवा न लगी। बुद्धि तीव्र रहनेके कारण इस अवस्थामें ही मैं गाना बजाना और पढ़ना-

लिखना भी भली भांति सीख गयी। जिस समय मैं सितार लेकर बैठती और झूम झूमकर सूरदासके पद गाती, उस समय सभी मन्त्र-मुग्धसे रह जाते थे। उस समय पिता मेरे गुणोंको सराहते, माता मेरे रूपकी प्रशंसा करतीं, और अड़ोस पड़ोसकी मेरी उम्रकी संगिनियां मेरे इस आदर-मानको देखकर ईर्षासे दग्ध होने लगती थीं।

हां, मेरे रूप-गुणकी ख्याति इसी समयसे होने लगी थी। ग्यारहवां वर्ष लगते लगते तो मेरे विवाहके लिये दलालोंकी भरमार हो गयी। रोज़ कोई न कोई पिताके पास पैग़ाम लेकर पहुंचा ही रहता था। न जाने पिताकी क्या इच्छा थी; कि वे उनकी बातोंपर अभी कान ही नहीं देते थे। पर माताको मेरा अब अविवाहिता रहना जँचता न था। मुझे अच्छी तरह याद है, मैं बगलके कमरेमें सोई हुई थी, पिता मातामें मेरे विवाहके सम्बन्धकी ही की कुछ चर्चा चल रही थी। माताने कहा—'उसके शरीरके उठानको तरफ नहीं देखते, है तो ग्यारह वर्षकी ही; पर मालूम होता है मानो तेरहवां-चौदहवां वर्ष लग गया हो। ऐसी सयानी लड़की भी क्या यों कुंवारी रखी जाती है। समाजवाले क्या कहेंगे ? इतना रूप और यह उठान ! अब यह लड़की घरमें रखने योग्य नहीं है।'

सुनते ही मेरे कान खड़े हो गये। अपने रूपकी ख्याति किसे नहीं भाती ? पीछे बड़ा-सा आइना लगा था। उसके

सामने जाकर खड़ी हो गयी। कान तो थे पिताके उत्तरकी ओर, पर आंखें उस आइनेमें दिखाई देती हुई अपने रूपको छटा पर थीं। ओह! वास्तवमें उस समय अपने रूपपर मैं आप ही मुग्ध हो पड़ी। आजतक इतनी सुन्दरता मैंने अपनेमें कभी अनुभव न की थी। सचमुच ही इसी समयसे मेरा सारा शरीर भरना आरम्भ हो गया था। वसन्त-समागमको शोभा जिस तरह प्रकृतिको सौंदर्यमयी बना देती है, उसी तरह इस समय मेरे शरीरको भी मानो यौवन समागमकी छायाने विकसित करना आरम्भ कर दिया था। उस पर नींदसे अलसायी हुई आंखें और अर्द्ध चन्द्र-से ललाट पर घुंघराले केशोंकी कुछ लटोंने आकर तो और भी गज़ब ढा दिया था। हां, उसी दिनसे मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मैं सुन्दर हूं और हृदयमें गर्वकी मात्रा भी कुछ बढ़ गयी।

न जाने क्यों, पिता अभी मेरा विवाह न करना चाहते थे। सम्भव है कि यह मेरे स्नेहका कारण हो। पर उस समय पिताने जो उत्तर दिया वह कुछ दूसरे ही ढंगका था। उन्होंने उत्तरमें कहा—'हमेशा कहा करती हो कि मेरी लड़की राज-रानी होगी। यह रूप किसी ग़रीब घरमें शोभा पाने योग्य नहीं है। मैं भी इसे किसी ऐसे ही घरानेमें देना चाहता हूं जहां यह राजरानीकी भांति ही रह सके। अतएव जल्दी करनेसे काम न चलेगा।'

माता बोली—"यह तो समझी, पर बड़े घरमें व्याहनेकी

तुम्हारी सामर्थ्य कहां है? इतने रुपये कहांसे लाओगे?'

पिता ठठाकर हंस पड़े। बोले-"माल बढ़िया होना चाहिये, खरीदारकी कमी नहीं रहती। दूने दाम दे कर ले जाता है।"

माताने कुछ संकुचित होते हुए कहा—"तुम्हारी ये बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। खैर, विवाह और प्रीति समानसे ही शोभा पाती है।"

पिता बोले—"प्रियम्वदा रूपमें लक्ष्मी, गुणोंमें सरस्वती है। रूप गुणका ऐसा संयोग बड़े भाग्यसे दिखाई देता है। परमात्माकी दया समझो कि स्वर्गकी यह लक्ष्मी तुम्हारे घर आ गई है। सम्भव है, इसकी बदौलत ही हम लोगोंका भाग्य जाग उठे। अतएव, इसे घर-वर दोनों ही देख कर व्याहना होगा।"

माता कुछ समझीं या न समझीं, मैं नहीं कह सकती। पर मैं इतना अवश्य समझ गयी, कि मेरा यह रूप पिताके लिये लाभ-दायक है। इसी लिये, किसी बड़े घरकी खोज हो रही है। हाय! क्या ही सुन्दर होता, यदि मैं किसी गरीब वर-घरके ही पाले पड़ी होती। यदि वैसा होता, तो आज यह दिन देखना भी नसीब न होता और न अपनी दर्द-भरी आत्मकथा सुना कर ही आप लोगोंके मनमें कष्ट पहुंचानेका अवसर आता।

माताने कहा—"कुछ भी हो, अब इसके व्याहकी चेष्टा

जल्द ही होनी चाहिये। मुझे चार औरतोंके सामने नीचा देखना पड़ता है। लोग आवाज़ा कसते हैं। कहते हैं, जब आमदनी नहीं तो इतना ठाट-बाट क्यों कर रक्खा है? बेटी व्याहनेके लिये तो पैसे नहीं हैं, पर अपनी शान-बानमें कसर नहीं की जाती।"

पिताने कहा—"संसारको कोई सन्तुष्ट नहीं कर सका है। कम उम्रमें विवाह कर दो तो अपराध और बड़ी उम्रमें करो तो बदनामी। खैर, मैं भी इसी चिन्तामें हूं, पर प्रियम्वदाको कूएमें नहीं ढकेल दूंगा।"

बातका अन्त हो गया। शायद और भी कुछ बातें होतीं, पर इसी समय अचानक मेरे जागते रहनेका उन्हें सन्देह हो गया। माता उठ कर मेरे उस कमरेमें आयीं, जिसमें मैं सो रही थी। मैंने भी आहट मिलते ही सिरसे चादर तान ली। वे धीमी आवाज़में मुझे एक दो आवाजें लगा, उत्तर न पा कर, लौट गयीं।

उस रातमें तो बात दब गयी, पर दूसरे ही दिनसे चेष्टामें कुछ विशेषता आ गयी। पिताके कथनानुसार माल खरा था, अतः खरीदारोंकी भरमार होने लगी। पुरोहितने दलाल तथा समाजकी बड़ी बूढ़ी औरतोंने दलालिनका काम जोरोंमें सम्हाल लिया। इतने पैग़ाम आये, इतनी जगहसे बातें आयीं, कि अब पिता भी उनकी अवहेलना न कर सके। अन्तमें, बम्बईके ही एक धनीमानीके सुपुत्र स्वयं घरके

मालिक, लाखोंकी आमदनीवाले, वरसे मेरा विवाह पक्का हुआ।

हिन्दू धर्मके अनुसार वरका नाम लेना मना है, पर क्या करूं, इस समय लाचारी है। अतएव कहना ही पड़ता है, कि जिन महोदयके साथ मेरा जीवन-बीमा हो रहा था, उनका नाम श्रीमान् अमरनाथ था। आपकी उम्र इस समय लग-भग चालीस वर्षकी थी। पहली स्त्रीका स्वर्ग-वास हुए बहुत दिन हो चुके थे, पर तबसे आपने दूसरा विवाह नहीं किया। आपके मन-मुताबिक रूप गुणसे सम्पन्न कोई कन्या दिखाई ही नहीं देती थी। अतएव आपने स्थिर कर लिया था, कि अब विवाहित जीवनका सुख भाग्यमें बदा नहीं है। पर आप ठहरे बड़े आदमी, वर्षमें आपके कारबारमें लाखोंका वारान्यारा होता था, ऐसी अवस्थामें ये दलाल कब आपको छोड़नेवाले थे। अन्तमें मुझ 'रूप-गुणमें लक्ष्मी, सरस्वतीका' समाचार भी आपके कानों तक जा पहुंचा। पितासे भेंट करनेके बहाने आ कर एक दिन आप मेरी सौन्दर्यसुधाका पान कर तृप्त हो कर चले गये। खैर, आपके घरमें आपकी हृष्ट पुष्ट वृद्धा माता अब तक मौजूद थीं। एक वृहत् अट्टालिकामें आपका निवास था और आपके घरमें सुखके सभी साधन मौजूद थे, केवल स्त्री न थी।

एक दिन ये आ कर मेरी सौन्दर्यराशिका दर्शन क्या कर

गये, मानो ये उसी दिवससे मेरे लिये लालायित हो उठे। मेरे पिता किसी गद्दीमें नौकरी करते थे। अतएव व्यवसायी बुद्धिकी उनमें कसर नहीं थी, सौदा करना वे अच्छी तरह जानते थे और यह ज्ञान उनमें भली भाँति था, कि मन-पसन्द पदार्थ प्राप्त होनेमें जितना ही विलम्ब होता है, खरीदार उतना ही चंचल और अधीर होता जाता है—और खास कर वह माल जब स्त्री-रत्न हो। अतएव मन-ही-मन उन्होंने मेरा सौदा श्रीमान् अमरनाथसे ही पक्का कर लिया था, पर दिखाआ बातें और जगह भी करते थे। इधर मेरे भावी प्राणनाथके यहां भी उनका आवागमन बढ़ता जाता था। कभी कभी बन्धुता दिखाने और अपना प्रेम दिखलानेके लिये श्रीमान् भी अपने स्थूल-कायको लिये मेरे यहां पधार जाते थे। एक दिन यह भी मैंने सुना, कि मेरे भावी पतिदेवने शेयरका सौदा करवा कर मेरे पिताको दस हजार रुपये पैदा करा दिये हैं। इन्हीं रुपयोंसे बड़े ठाट-बाटसे मेरा विवाह होगा।

सचमुच ही पितासे उनकी घनिष्ठता बढ़ती जाती थी। यद्यपि अभी विवाहकी बात पक्की न हुई थी, इधर उधरसे पैगाम भी आ ही रहे थे; परन्तु श्रीमान अमरनाथके यहांसे भी तीज त्योहार अथवा उत्सवके बहाने बहुमूल्य पदार्थ आ जाते थे। वसन्तपञ्चमीके अवसर पर मेरे लिये एक इतनी बढ़िया साड़ी और हाथकी अंगूठी आयी थी कि जिनका मूल्य

एक हजार रुपये होगा। यह भी मैं देखती थी, कि अब मेरे घरमें रुपयोंका अभाव नहीं है और शान-शौकत तथा साज-सज्जाके सामान बढ़ते ही जा रहे हैं।

वास्तवमें अमरनाथसे ही एक प्रकारसे मेरा जीवन-बीमा पक्का हो चुका था। विलम्ब अपना घर भरनेके लिये पिता कर रहे थे और थोड़े ही दिनोंके भीतर दस-पन्द्रह हजारकी सामग्री उन्होंने अपने यहाँ भर भी ली। इतने पर भी स्पष्ट न कहा कि विवाह पक्का कर चुके हैं। मेरी माता उनकी इन कार्रवाइयोंपर हमेशा ही कुछ न कुछ कहा करती थीं। उन्हें मेरे पिताकी ये चालें पसन्द न थीं। परन्तु जब कभी वह कुछ कहतीं, तभी मेरे पिता उनकी बातोंको हंसकर उड़ा देते। माता भी चुप रह जातीं।

एक दिन तीसरे पहरका समय था। पड़ोसकी कई स्त्रियाँ मेरी माताके शयन-गृहमें आकर बैठी थीं। मैं भी वहीं एक ओर बैठी कसीदा काढ़ रही थी, कि इसी समय मेरी माताकी एक सहेली छम-छम करती वहाँ आ पहुंची। इसका नाम लक्ष्मी था। बड़ी ही हंसमुख और मसखरी। जहाँ बैठ जाये, रोतोंको भी हंसा दे। आते ही उसने कहा—"क्यों बहिन! वाह! आजकल तो तुम्हारी पांचों अङ्गुलियाँ घीमें हैं।"

माताने मुस्कुराकर कहा—"आज यह नया शगूफा कैसा! क्या मामला है?"

लक्ष्मी बोली --"वाह ! सारी रामायण हो गयी सीता किसकी जोय ।—जाति-भरमें ढिंढोरा पिट रहा है और तुम्हें खबर ही नहीं । मुझसे क्यों छिपाती हो ?"

माताने कहा—"आज भांग तो नहीं पी ली है ?"

लक्ष्मी कब चूकनेवाली थी । झट बोल उठी—"मैंने तो भांग नहीं पी है, पर मालूम होता है, तुम लोगोंके मतमें भांग पड़ गयी है-तभी तो......।"

माता समझ गयीं । उन्होंने एक बार मेरे चेहरेकी ओर देखा, फिर लक्ष्मीकी ओर । लक्ष्मी चुप हो गयी । पड़ोसकी स्त्रियोंने समझा, इनमें कुछ गुप्त परामर्श होनेवाला है । वे उठकर चली गयीं । माताके बहुत कुछ कहनेपर भी फिर न बैठीं । और मैं—मैं भी कुछ सकुचाती हुई वहांसे उठ खड़ी हुई ।

वहांसे चल तो पड़ी, पर वह कमरा छोड़नेकी इच्छा न होती थी । मैं समझ गयी थी, कि लक्ष्मी मौसीको मेरे भावी विवाहके सम्बन्धमें कुछ खबर मिल गयी है । उसने आते ही जो शब्द कहे हैं, उनमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य हैं । थी तो मैं बालिका ही, पर न जाने उसी समयसे मुझमें बुद्धि की प्रखरता कहांसे आ गयी थी । अपने विवाहके बारेमें लोगोंकी क्या राय है, यह जाननेकी बड़ी ही उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी । अतः माताको दिखानेके लिये नीचेकी ओर दौड़ चली, पर तुरन्त ही घूमकर दूसरी राहसे उस कमरेके पीछे

ही झड़ पड़ा और जंगली-पशुओं या पथिकोंके पैरोंसे रौंद दिया गया ?

हाँ, लोगोंने—समाजके सिरधरुओंने और अधिकार प्राप्त समाजके सुख्याति-भरे ढोलमें पोल रखनेवाले आडम्बरबाज़ोंने रौंद देना तो अवश्य चाहा था, उनकी इच्छा अवश्य थी, कि इसे इस तरह मसल दिया जाये, जिस तरह निर्दय बालक गुलाबकी पँखड़ियोंको तोड़ मरोड़कर फेंकता और फिर उन्हें बटोरकर हाथसे और चुटकियोंसे मसल डालता है। पर उस लीलामयकी लीलाको कौन जानता है। मैं बची और खूब बची। और शायद इसीलिये बची, कि आज अपनी दुःख-दर्द-भरी आत्मकथा आपलोगोंको सुनाऊँ और दिखा दूँ कि जिस जातिके शास्त्रकार डंकेकी चोट बता रहे हैं, कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवताः' उसी जातिमें, उसी शास्त्र-वचनको माननेवाले समाजमें, आज नारी-जातिकी क्या अवस्था हो रही है और आज नारी-जाति किस तरह पद-पद-पर अपमानित और लांछित हो रही है। ऐं! नारीको रत्न कहा है—हाय हिन्दूसमाज! क्या इस रत्नका यों ही आदर होता है? क्या रत्न इसी तरह पैरोंसे ठुकराया जाता है? क्या रत्न-लक्ष्मीका इसी तरह सम्मान किया जाता है? मैं सत्य कहती हूं, कि आज इस रत्नका अपमान करनेके कारण ही इस देशकी लक्ष्मी सात समुद्र पार जा बसी है। आज नारी-रत्नकी दुर्दशाके कारण ही देशमें अनाचार,

अविचार और अयोग्योंकी भरमार हो रही है और आज समाजके अत्याचारों और भयंकर दुष्कृत्योंका ही यह परिणाम है, कि जो देश अनगिनती सती-साध्वियोंका उत्पन्न करनेवाला था, जिसमें दुराचार और व्यभिचार सबसे बड़ा कलंक समझा जाता था, उसमें आज गली गली रूप-यौवनका सौदा करनेवाली वारवनिताओंका प्रसार दिखाई देता है।

इन्हें आप मेरी कपाल कल्पित बातें न समझ लें। ऊपर मैं जो कुछ कह चुकी हूं, उसे अपनी जीवन-घटनाओं द्वारा प्रमाणित कर देनेके लिये ही मानो परमात्माने मुझे बचाया था। शायद मेरी आत्म कथा—और मेरी जीवन-चर्चा डूबते हुए इस हिन्दू-समाजको बचाले। इसीलिये, आज मैं अपनी कहानी आप लोगोंको सुनाने बैठी हूं। कहानी क्या सुनाने बैठी हूं, मैं बता देना चाहती हूं कि पाठक पाठिकाएं सम्हलें, हिन्दू-समाज सम्हले और सम्हलें वे धर्मध्वजी, जो शास्त्र-मर्यादाका दिखावा तो दिखाया करते हैं, पर जो वास्तवमें हैं, कामके पुतले और अनाचारोंके आश्रयदाता।

मैंने अपने जीवनमें अद्भुत अद्भुत घटनायें देखी हैं—अपनी जातिकी—इस दुर्दशाग्रस्त विधवा जातिकी अनेकानेक संगिनियोंसे मुझे काम पड़ा है, बड़े बड़े घरोंमें मेरी गुज़र हुई है, अनेक धर्म पाखण्डियोंसे मेरा सामना हुआ है और कितनेही रसातल-गामियोंसे मुझे पाला पड़ चुका है। अतएव आशा है, कि मेरी जीवनीसे समाज कुछ लाभ उठायेगा।

वाले बरामदेमें जा पहुंची। और लगी कान लगाकर सुनने।

माताने हंसकर कहा—"लो, अब जो कहना हो कह लो, बताओ, कैसी मतमें भांग पड़ी है।"

लक्ष्मीने कुछ तिर्छी आँखोंसे माताकी ओर देख, उनकी आंखोंसे आंखें मिला, उन्हें जरा धक्का देते हुए कहा—"मुझसे ही उड़ती हो! क्या दाईसे पेट छिपता है? प्रियम्वदाका विवाह ठीक हो गया न, और मुझे खबर तक नहीं।"

माताने कहा—"तू तो पगली है, भला यह भी कोई छिपानेकी बात है। बात तो यह है, कि अभी कहीं ठीक ही नहीं हुआ।"

लक्ष्मीने दो चार बार सर हिलाकर कहा—"तब मालूम होता है, कि तुम लोग कोई पाप कर रहे हो, इसी लिये छिपानेकी जरूरत आ पड़ी है। पर जानती हो, पाप छिपानेसे नहीं छिपता। पापका घड़ा कभी न कभी फूटता ही है।"

माताने हंसकर कहा—"तब आज तूने जरूर भांग पी ली है, तभी ऐसी बहकी-बहकी बातें मुंहसे निकाल रही है।"

लक्ष्मीने झुंझलाकर कर कहा—"हाँ हाँ, भांग पी है, पर अबतक मतमें भांग नहीं पड़ी है, यदि पड़ी होती तो ऐसी सोना जैसी लड़कीको उस पेट-फूले अमरनाथ जैसेसे व्याहने के लिये मैं भी तैयार हो जाती। वाह! कैसा सुन्दर रंग-

रूप है, मानो मिट्टीका लोंदा! वह प्रियम्वदाके योग्य तो नहीं है, पर हाँ, तुम्हारे लायक जरूर है।"

इतना कह, लक्ष्मी ठठाकर हंस पड़ी। हंसी तो मानो उसके ओठोंपर अठखेलियाँ ही किया करती थी। वह जो कुछ कहती हंसकर। पर इतने पतेकी कह देती थी, कि सुननेवाला तिलमिला कर रह जाता था। उत्तर देना कठिन हो जाता था।

माता कुछ अप्रतिभ हो पड़ीं। दबी ज़बानसे बोलीं—"यह तुझसे किसने कह दिया!"

लक्ष्मीने जरा मुंह बनाकर कहा-"किसने कहा? जानती हो दीवारोंके भी कान होते हैं। भला बताओ तो सही, कि इसके पहले ही प्रियम्वदाके पिता और अमरनाथ कभी शेयर बाजार गये थे? इसके पहले भी कभी ज़रीकी धोतियाँ और अंगूठी आयी थी? बहिन! बुरा न मानना, तुमलोग इस विवाहको पाप समझ रहे हो, तभी छिपा रहे हो और वास्तवमें है भी पाप! प्रियम्वदाको उस घोंघानाथके गले बांधना वास्तवमें पाप करना है। उसका जीवन नष्ट करना है।"

लक्ष्मी इतनी तेज़ीसे ये बातें कह गयी, कि माताका चेहरा उतर गया। बात सच्ची थी, उत्तर देनेकी कोई जगह न थी। अतएव उन्होंने सर झुकाकर कहा---"बहिन! मुझे कुछ मालूम नहीं। उनसे ही पूछना।"

लक्ष्मीने ऐंठकर कहा---"हां हां, उनसे भी ज़रूर पूछूंगी। परन्तु आज तुम्हें इतना चेताए देती हूं, कि लड़कियाँ और कुछ नहीं चाहतीं, वे चाहती हैं रूप, वे चाहती हैं सौंदर्य, वे चाहती हैं, कि जिस तरह वे अछूती; बिना जुठाई और पवित्र हैं, वैसा ही पति उन्हें मिले और चाहती हैं युवावस्था। पिता-माता भले ही रुपयेपर ध्यान दिया करें, भलेही गुणोंका अन्वेषण किया करें, पर नववधू बालिका, उसे तो वैसा वर ही चाहिये, जैसी वह है। इसी लिये वरका रूप देखा जाता है, इसी लिये उसकी अवस्था देखी जाती है। बताओ, तुम यदि किसी बुड्ढे के गले बांध दी जातीं तो तुम्हारा मन उससे मिलता ?"

माताने बात टालनेके खयालसे कहा—"अच्छा, अच्छा मैं जानती हूं, कि तू बड़ी बुद्धिमती है।"

इसी समय किसीके आनेकी आहट मालूम हुई। दोनों ही चुप रह गयीं। मैं भी समझ गयी, कि मामला यहीं खतम हो गया। अतएव घूमती-फिरती फिर वह वहां आ पहुंची। उसी दिनसे मेरे मनमें कुछ और ही विचार उत्पन्न हो गये। उसी दिवससे मेरे हृदयमें एक दूसरी ही आकांक्षा उत्पन्न हो गयी। मैं सोचने लगी,—भारतीय नारी-जीवन क्या इतना घृणित है? क्या भारतीय बालिकाओं, अविवाहिताओंको अपने विषयमें कुछ सोचने, कुछ बोलने और कुछ कहनेका अधिकार भी नहीं है? खूब सोचा, जी भर कर इस प्रश्न

पर विचारा ; पर अन्तमें निराशा, घोर निराशा ही दिखाई दी। मैं मन मसोसकर चुप रह गयी।

उसी रात्रिमें मेरे माता-पितामें फिर विवाद आरम्भ हुआ। लक्ष्मीकी बातोंने माताके हृदयपर बहुत कुछ प्रभाव जमा लिया था। अतएव, उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें इस विवाहका प्रतिवाद किया। पर मेरे पिता भी कम होशियार न थे। उन्होंने मेरी माताकी बातोंका तो कोई उत्तर न दिया। "ठहरो" कह कर, उसी कमरेमें रखी हुई लोहेकी आल्मारी खोली। उसमेंसे पचीस हज़ारके नोट और माताके लिये लगभग पाँच हजारके ज़ेवर निकाल कर रख दिये। दरिद्र घरकी सन्तान, दरिद्रतामें ही प्रतिपालित मेरी माताकी आँखें लक्ष्मीकी यह चमक-दमक देख चौंधिया गयीं। इस लक्ष्मीके आगे जीवित लक्ष्मीकी सारी बातें, समस्त उपदेश और यथेष्ट हार्दिक आघात जलके बुलबुलेकी तरह हवा हो गये।

पिताने तीक्ष्ण दृष्टिसे—टटोलनेवाली दृष्टिसे मेरी माताके चेहरेको देखते हुए कहा—" यह सम्पदा आज अमरनाथकी कृपासे प्राप्त है। यह ठीक है, कि ये रुपये उन्होंने नहीं दिये हैं, इन रुपयोंके लिये मैं उनका वाध्य नहीं हूं, यह उन्होंने शेयरमें पैदा करा दिये हैं, तथापि यह सोनेकी चिड़िया है।"

कलिने अपना प्रभाव जमा लिया। माताने कहा—"हम स्त्रियोंको सदा पतिकी आज्ञामें रहना सिखाया गया

है और सदा दासी मात्रसे रहनेकी ही शिक्षा हुई है। पढ़ना लिखना, 'काला अक्षर भैंस बराबर' हो रहा है। अतएव तुमसे अधिक भला बुरा सोचनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, पर इतना मैं अवश्य कह सकती हूं, कि प्रियम्वदा सुखी नहीं होगी, पति-पत्नीका हृदय न मिलेगा।"

पिता ओंठ बिचकाते हुए बोले—"तुमने भी अच्छी कही, मन न मिलेगा। मन तो कुछ दिन साथ रहनेसे ही मिल जाता है। और जानती हो, वह हिन्दू घरकी कन्या है, आज तक उसने यही देखा है, कि भारतीय नारियां, चाहे पति कैसा भी हो, उसकी दासी बन कर हो रही हैं। तुम विश्वास रखो, कि तुम्हारी कन्या राज-रानी होगी, हीरे मोतियोंसे लदी रहेगी, पति उसके लिये पलकोंके पाँवड़े बिछाये रहेंगे। अमरनाथकी सम्पत्तिकी वह दूसरी नूरजहाँ होगी।"

माताका कुछ विशेष कहनेका साहस न हुआ। इतना ही बोली—"भगवान करे मेरी लाड़ली ऐसी ही हो।"

मेरे हृदयमें इस विवाह सम्बन्धको लेकर जो खलबली मची हुई थी, उससे मेरी आँखोंमें नींद कहाँ। अतएव ऊपर कहे सभी काण्ड किवाड़की दरारसे मैंने अपनी आँखों देखे और कानों सुने। समझ गयी, कि मेरा जीवन-बन्धन श्रीमान् अमरनाथसे ही बँधना स्थिर हो गया है, जान गयी कि मेरा जीवन हीरा-मोतीसे तौल दिया गया है।

और यह मालूम हो गया, कि मेरे सुखोंकी अपेक्षा पिता-माताको सम्पत्ति प्यारी है, और प्यारा है सोना।

ज़रा विचारिये। जब कोई मनुष्य अपना जीवन-बीमा—'लाइफ इन्श्योर' कराता है, तो लाइफ इन्श्योरेन्स कम्पनी-वाले उसके तीन पुश्तका समाचार संग्रह करते हैं, पिता-माता किस उम्रमें मरे थे, किस रोगमें मरे थे, जीवन-बीमा करानेवाला कोई नशा तो नहीं करता, डाक्टर आ कर उस-की नस नसकी परीक्षा कर ले जाता है, परन्तु हाय हमारा समाज! इसे इन बातोंकी ज़रा चिन्ता नहीं है, बेटी ब्याह देनेसे ही कर्त्तव्यकी 'इति श्री' हो गयी। घर वर दोनों विवाहमें देखे जाते हैं। यह देखनेका मतलब है, घरवालोंकी चाल-चलन, रहन-सहन, आचार-विचार, किस संगतिमें वरका प्रतिपालन हुआ है और वर देखनेका मतलब है, वरकी उम्र, शारीरिक गठन, शिक्षा-दीक्षा, धन-सम्पत्ति और आचार-व्यवहार या चाल-चलन! पर आज ये सभी बातें हवा हो गयी हैं।

और जगह हुई हों या न हों, पर मेरे लिये तो मानों इन बातोंपर ध्यान देनेकी जरुरत ही न थी। मुझे तो राज-रानी बनना था, अतएव वैसी ही कार्रवाई भी की गयी। रही पिताके कथनानुसार सेवा-भाव—वह तो मानो भारतीय नारियोंकी मौरूसी जायदाद है, उसके लिये भी शिक्षाकी कोई जरूरत नहीं समझी जाती। पर इस बातपर कोई भी

ध्यान नहीं देता, कि संगतिका क्या असर होता है, व्यवहारोंका क्या प्रभाव होता है और अत्याचार जब अतिकी मात्रापर पहुंच जाता है, तो उसका कैसा प्रतिफल !!

कुछ भी हो, पिताने किसी तरह बातों ही में एक वर्ष और भी बिता दिया। इस बीच उन्होंने लगभग आधे लाखकी सम्पत्ति भी बटोर ली। अब वे धनी थे, अब समाजमें उनका खासा आदर मान था, अब वे पैरों नहीं बल्कि गाड़ी-घोड़ेपर निकलते थे। अब नौकरी न करते थे, बल्कि शेयर बाज़ारके प्रतिष्ठित दलालोंमें उनकी गिनती थी। मुझे अबतक याद है, पिताने एक दिन मेरी मातासे कहा था—"तुमने कहा था वैर, विवाह और प्रीति समानसे ही शोभा पाती है। बताओ, अब तो शोभा पायगी।"

विधिका विधान न मिट सका। वर्ष भर बाद बड़ी धूम-धामसे मेरा विवाह श्रीमान् अमरनाथसे हो गया। सुना था, इस विवाहके खर्चका बहुत कुछ अंश उन्होंने ही दिया था। परन्तु विवाहके बाद भी एक वर्ष तक मैं और भी अपने मायके ही रह गयी। पिताने कहा—"कन्या अभी छोटी है, अभी गौना न करूँगा।"

रूप-मुग्ध पतिदेवने यह भी स्वीकार कर लिया। इसके बाद जिस समय मेरे अवस्था चौदह वर्षकी हो चुकी थी, जिस समय मेरे अंग अंगमें यौवनकी बहार छा रही थी, उस समय मेरा गौना हुआ और मैं पतिसेवाके लिये ससुराल भेज दी गयी।

तीसरा परिच्छेद !

ससुरालमें।

ओह ! ससुरालमें आकर सचमुच ही मेरी आँखोंमें चकाचौंध छा गयी। चारों ओर वैभव और शान-शौकतके नज़ारे दिखाई देते थे। समस्त गृह साज-सज्जासे परिपूर्ण हो रहा था और चारो ओर ही ठाठ-बाटकी भरमार थी। जिस दिनसे मैं ससुराल पहुंची हूं, उसी दिनसे मानों राज-रानी बन गयी। सास मेरा रूप देखते ही खिल उठीं, देवरानियाँ झिझक पड़ीं और देवरोंने भी तिरछी दृष्टिसे एक बार अच्छी तरह मेरी सौन्दर्यसुधा पी ली। सासने कहा—"आज सचमुच ही मेरे घरमें लक्ष्मी आ गयी है।" पतिदेव भी घूम-फिरकर मुझे देख गये। समूचा दिवस अड़ोस-पड़ोसकी—नाते-रिश्तेकी स्त्रियोंका आवागमन बना रहा। जो आयी, वही मेरे रूपको सराह गयी, मेरे भाग्यकी प्रशंसा कर गयी और ऐसी बहू पानेके लिये मेरी सासको बधाई दे गयी। उस एक ही दिवसमें मुझे मालूम हो गया कि मैं इस गृह-राज्यपर अपना अधिकार जमा लूंगी, पर यह कौन जानता था कि मेरे भाग्यमें कुछ दूसरा ही बदा है।

संध्या हुई। मेरा शृंगार आरम्भ हुआ। कितने तरहके

उवटन, तेल-फूलेल लगाकर सुगन्धित साबुनसे मुझे स्नान कराया गया। दो दासियाँ मेरी सेवाके लिये नियुक्त हुईं। इन्होंने अच्छी तरह नहला धुला-कर मेरा शृंगार करना आरम्भ किया। बहुमूल्य रेशमी वस्त्र तथा नाना प्रकारके जड़ाऊ अलङ्कारोंसे मुझे सजा दिया गया। ये दोनों ही दासियाँ शृंगारमें बहुत प्रवीण थीं। इनका काम ही था, संध्या होने बाद बहुओंका शृंगार करना। बड़े आदमियोंके घरकी बात थी। सभी काम ठाट-बाटसे होते थे। इनमें एक प्रौढ़ा दासी तो बहुत ही चतुर और हँसमुख थी। उसने मेरा शृंगार कर मुझे एक क़द्आदम आइनेके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। ओह! उस समय—उस समय मैंने देखा—मैं कुछ दूसरी ही हो गयी हूं। अपना ऐसा रूप मैंने आज तक कभी न देखा था। उसी कमरेमें मेनका की एक बहुत ही बढ़िया तस्वीर लगी हुई थी। मैं जानती थी कि मेनका स्वर्गकी अप्सरा है। अपनी रूपकी उससे तुलना करने लगी। मैं जीत गयी—वह हारी! मुझे विश्वास हो गया—मेरे मुकाबलेमें यह स्वर्गकी सुन्दरी कुछ नहीं है।

इसके बाद मैं फिर अपनी सासके पास पहुंचायी गयी। सासने जी-भरकर मुझे निहारा। मेरे अंग अंगपर, मेरी प्रत्येक सजावटपर अच्छी तरह ध्यान दिया। उनकी दृष्टिसे ही मालूम होता था, कि वे शृंगार-पारखिन हैं। इसके बाद

कुछ रुपये निकाल, न्योछावरके रुपमें उन्होंने उन दासियोंको दे दिये।

मेरी सास हो तो गयी थीं वृद्धा, पर अबतक उनमें तेजीकी कमी न आयी थी। घरके सारे काम काजपर उनका ध्यान था। कौन क्या कर रहा है—सभी ओर उनका लक्ष्य रहता था और हमेशा उनकी सतर्क दृष्टि चारों ओर दौड़ती रहती थी। उनकी चाल-ढाल और हाव-भावसे ही मालूम होता था कि उनमें शासन-क्षमता है, इतने लड़कों और बहुओंके होते हुए भी वे ही अबतक इस गृह-राज्यकी वास्तविक अधिष्ठात्री हैं।

सासने बड़े प्यारसे एक ऊनी आसनपर मुझे बैठाकर भोजन कराया। इस समय उन्होंने मुझे घर-गृहस्थी-सम्बन्धी कितने ही उपदेश बातों बातोंमें ही दिये। यह भी कहा कि आजसे तुम इस घरकी मालकिन हुई। अपने बड़े बेटेका नाम लेकर बोलीं—वही इस घरका मालिक है और अब तुम आयी हो। इस घरको बनाना-बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथ है। आशीर्वाद देती हूं कि तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे और तुम सुखी हो।"

न जाने क्यों, इस एक दिनमें ही सासका सारा स्नेह मानों मुझपर उमड़ पड़ा था। पीछे दासियोंसे मालूम हुआ कि मेरी सासकी प्रकृति अत्यन्त क्रोधी थी, ऐसा व्यवहार उन्होंने आजतक किसीसे न किया था। बेटे-बहू, दास-दासी सभी

उनकी तीव्र प्रकृतिके कारण थर-थर कांपते रहते थे।

ठीक रात्रिके नौ बजे वही दासी मुझे मेरे शयन-गृहमें पहुंचा गयी। इस कमरेकी सजावटका क्या कहना है। चारों ओर विलासकी सामग्री मौजूद थी; हर तरफ बड़े-बड़े बिल्लौरी आइने, मखमली सेज, सोफा और कुर्सियाँ, दीवारोंपर देश-विदेशोंकी सुन्दरियोंकी विलास भावमय चित्रावली और बिजलीके जगमगाते झाड़ और दीवारगीरियोंसे कमरा जगमगा रहा था। एक ओर एक बहुमूल्य बढ़िया सितार भी रखा था। सारा कमरा मनोमोहक सुगन्धसे भर रहा था।

दासी इस कमरेमें एक सोफ़ापर मुझे बैठाकर चली गयी। उस सजे हुए, पर एकान्त कमरेमें बैठी हुई मैं अपने भाग्यपर विचार करने लगी। क्या थी और क्या हो गयी। दरिद्र घरकी सन्तान–यहाँ कहां आ पहुंची। पर न जाने क्यों, इतना सब होनेपर भी मनमें उत्साहका अभाव था और उमंगकी कमी। मन न जाने क्यों बैठा सा जाता था। इन सुन्दर दृश्योंमें एक प्रकारकी विभीषिका-सी दिखाई देती थी।

एका-एक पर्दा हिला और कुछ देर बाद मेरे पतिदेव उस कमरेमें आ पहुंचे। उनके वस्त्रोंकी सुगन्धसे शयन-गृह और भी सुगन्धित हो उठा। मैंने एक बार तिरछी दृष्टिसे उनकी ओर देखकर सर झुका लिया। आँचल आप ही

कुछ आगे की ओर सरक आया। मेरे प्राणनाथने भी मेरी ओर देखा। उनकी दृष्टिमें था अनुराग।

इसी समय उस दासीने आकर कुछ जलपानकी सामग्री और कुछ फल रख दिये और आज्ञाकी राह देखती हुई एक ओर खड़ी हो गयी। पतिदेवने इशारेमें ही उसे कुछ कहा। वह चली गयी।

मेरे शयन-गृहकी बगलमें ही एक छोटी-सी और भी कोठरी थी। इसमें पानी आदि सामग्री रखी हुई थी। पतिदेवने स्वयं जाकर हाथ-मुंह धोया। और इसके बाद वह जलपानवाला नन्हा-सा टेबिल उसी सोफ़ाके पास खींच लाये, जिसपर मैं बैठी हुई थी।

उन्होंने उसी सोफ़ापर बैठते हुए कुछ अनुराग भरे स्वरमें कहा—"अब इस घूंघटसे काम न चलेगा।" इतना कहकर उन्होंने मेरे सरसे घूंघट हटा दिया। मैं चुप बैठी रही। बिजलीकी रोशनीकी चमकमें मेरे दमकते हुए चेहरेकी ओर बहुत देर तक वे अतृप्त नेत्रोंसे देखते रहे। इसके बाद जल-पान हुआ। उनके विशेष आग्रहपर मुझे कुछ खाना ही पड़ा।

हाँ, नारी-जीवनका उत्कर्ष और विकास इस स्थानसे ही आरम्भ होता है। इसी दिवससे दो हृदयोंके एक हो जानेका कार्य आरम्भ होता है, और आजकी ही वह रात्रि रहती है, जब स्त्री-जाति एक दूसरे ही जीवनमें पदार्पण

करती है। परन्तु मेरे लिये, सारी सुख-सामग्री एकत्र रहने पर भी यह रात्रि मानो अनुरागकी वृद्धिके बदले निराशाकी लहरोंमें डूब गयी। सच कहती हूं, आज उसी सोफ़ापर बैठे हुए पतिदेवका, जिस समय स्पर्श हुआ, जिस समय उन्होंने बड़े प्रेमसे मेरा हाथ पकड़कर, नेह-भरे नेत्रोंसे मेरी ओर देखते हुए, अपना अनुराग प्रकट करना आरम्भ किया उस समय मेरे सारे शरीरमें एक प्रकारकी बिजली-सी दौड़ गयी। उस भावको, उस शारीरिक अवस्थाको, हृदयकी उस समयकी गतिको समझा देना, लेखनी और भाषाका काम नहीं है। वह है, नारी-जीवनका एक अभूत-पूर्व काल—वह है एक विद्युत्‌का अद्भुत प्रभाव, जो ठीक मर्म-पटलपर अपना स्पन्दन प्रकट करता है, जो अन्तस्तलमें एक विचित्र ही गुदगुदी पैदा कर देता है।

परन्तु हाय! इसके बाद ही जो कुछ हुआ, उससे मेरी सारी अभिलाषाओं, आकांक्षाओं और कुछ समय पहले उत्पन्न उत्साहोंपर पानी फिर गया। मुझे मालूम हो गया, कि ये समस्त सुखके साधन मुझे तृप्त नहीं कर सकते—यह सारी सम्पदा नारी-जातिके उस सुख और सम्पदाके सामने तुच्छ है, जो उसके जीवनकी साध है, जिसके द्वारा स्त्री-जाति का महान् उत्कर्ष संसाधित होता है। नारी-जाति माता कहलानेका गौरव प्राप्त कर सकती है। ओह! वास्तवमें मातृत्वका विकास मुझमें हो नहीं सकता था—मुझे

मालूम हो गया—मेरे पतिदेव अपना सब कुछ खो चुके हैं।

सारा शरीर झनझना उठा। मस्तिष्क खौल उठा। शरीरमें मानो आगसी बल उठी। मैं तड़पकर उस सुख-शय्यासे कूद पड़ी। मालूम होता था, मेरा कुछ ऐसा पदार्थ खो गया है, जो मुझे बहुत ही प्रिय हो। आँखें अंगारे सी लाल हो उठीं और शरीर तवेसा गर्म। मैं उस समय स्वयं ही समझ न सकी, कि मुझे यह क्या हो गया। ठीक तो याद नहीं है, पर इतना अवश्य कह सकती हूं कि, शायद मेरी उस समय वही अवस्था हो गयी थी, जैसी पैरों-तले कुचल जानेपर भुजंगिनीकी हो जाती है। मैंने एक बार तीव्र दृष्टिसे अपने उस स्थूल-काय निरर्थक ही हाँफते हुए पतिदेवके चेहरेकी ओर देखा। इसके बाद उसी सोफापर आकर बैठ गयी, जिसपर प्रथम प्रेमालाप आरम्भ हुआ था, जिसपर पहले-पहल पति-अङ्ग-स्पर्श हुआ था। और पति-देव ?—वे उसी पलंगपर दुःखित और लज्जित दृष्टिसे मेरी ओर देख रहे थे। उनके मुंहसे इतना ही निकला—"आज शरीर अच्छा नहीं है।"

सोचने लगी—आज यह क्या हो गया। क्यों ऐसा हो रहा है। आजतक तो कभी शरीरमें इतनी गर्मी, मनमें इतनी चञ्चलता, और हृयदमें इतनी विकलता न उत्पन्न हुई थी। ओह ! क्या ही अच्छा होता, यदि मेरा विवाह ही न होता। आजीवन कुमारी ही रहती और पुरुषके स्पर्शका सुख और

परिणामका अनुभव ही न होता। साथ ही यह भी विचार गयी, कि इस जीवनमें अब सुख बदा नहीं है। मैं हीरे-मोती से अवश्य तौल दी गयी हूं, पर जीवनकी साध अब मिटनेकी नहीं।

मैं सर झुका कर बैठ गयी। आंखोंमें आंसू भर आये। इसी स्थानपर अनुभव हुआ कि मैं अबला हूं। इसी जगह ज्ञान हुआ, कि मेरा जीवन शून्य है! परन्तु हाय पुरुष जाति, यह कितनी स्वार्थी जाति है। जिसे दूसरेका जीवन नष्ट कर देनेमें तनिक भी दुःख हर्ष नहीं होता। कौन कह सकता है कि मेरे पतिदेवसे उनकी शारीरिक अवस्था छिपी थी। उन्हें इस अवस्थामें विवाह करनेकी क्या जरूरत थी।

ओह! जो होना था सो हो गया। अब उसपर विचार करने होसे क्या होता है। मनने कुछ ठोकर देनी आरम्भ की। सभी सुखकी सामग्री तो मौजूद है, एक न हुई तो क्या, बलासे नारीजोवनका चरम उत्कर्ष मातृत्व का विकास न होगा। बला से तू माता कहलानेका गौरव न प्राप्त कर सकेगी। अपने आचरणोंसे जगन्माता बननेकी चेष्टा कर अपने इस वैभवसे हजारोंका उपकार कर उनकी माता बन जा। नारीजाति प्रेमकी मूर्ति नेहको नहीं और करुणाकी सरिता है। उसी सरिताके जलसे दीन दुःखियों-का तड़पता हुआ हृदय सींचनेपर हजारों सन्तानोंकी

माता बन सकती है, आखिर मैंने सोचा—ऐसा ही करूंगी।

मनके इस प्रलोभनने अवश्य ही जलन कुछ शान्त करनेकी चेष्टा की, पर पाठक! स्मरण रखें—यह आग वह नहीं है जो सहजमें बुझ जाये—इस आगको बुझानेके लिये जलसे नहीं आंसुओंसे सींचना पड़ता है, इतने पर भी नहीं बुझती, हृदयको राख बनाकर ही शान्त होती है।

वाह! परमात्माकी लीला! ऐसा ही था तो यह रूप क्यों दिया था; इस वैभव और आडम्बरपूर्ण घरमें क्यों भेज दिया था और जन्मते ही मुझे फिर बुला लेनेकी दया क्यों न दिखायी थी।

रात भर उसी सोफ़ापर बैठी रही। पतिदेव कुछ देर-तक मेरे चेहरेकी ओर देखते रहे। फिर उन्होंने बड़े दुःखसे कहा—"आओ सो रहो" पर मैं अपने स्थानसे टससे मस न हुई—जहांकी तहां ही बैठी रही। वे न जाने कब नींदमें जा पड़े।

पुरुषजातिकी इस स्वार्थ-परतापर मनमें बड़ी घृणा हुई। इस जीवनका ही अन्त कर डालूंगी। नित्य ही इस शयन-कक्षमें आना पड़ेगा और रोज़ ही एक नई आग सुलगेगी। नित्यका जलना—तिल-तिलकर मरना ठीक नहीं। क्यों नहीं, इस सुहाग रात्रिको ही कालरात्रिमें परिणत कर दूं। परन्तु न जाने क्यों साहस न हुआ—मनमें बल नहीं आया।

यों ही बैठे-बठे सवेरा हो गया। बाहर बराम्देमें पींज-ड़ोंके भीतर बन्द रहनेपर भी चिड़ियाँ चहक उठीं। पर मेरा हृदय—मेरा मन—वह ज्योंकी त्यों अवस्थामें पड़ा था। उठ कर किवाड़ खोल बाहर निकल आयी। बाहर दासी खड़ी थी।

फिर तो वास्तवमें नित्यकी ही यही लीला हो गयी। पतिदेव चुपचाप अपना इलाज तो करा ही रहे थे, पर अब और भी जोरोंसे चिकित्सा आरम्भ हुई। दूसरे दिनसे उन्होंने बीमार होनेका बहाना साधा। एक नामी हकीमका इलाज आरम्भ हुआ। परन्तु दो चार दिन भी दवा खाते न बीतता था कि वे अपनी शक्तिकी परीक्षा आरम्भ कर देते—सारी शक्ति हवा हो जाती और मेरा शरीर भी आगमें भुन जाता था।

सासको भी मालूम हुआ कि पतिदेवकी तबियत अच्छी नहीं है। सुनते ही उन्होंने कहा—"अच्छी बहू आयी, जिसने आते ही मेरे बच्चेको बीमार कर दिया।"

मैंने अनुभव किया, जिस दिनसे उन्होंने मेरे पतिदेवका बीमारीका समाचार सुना, उसी दिनसे मुझपर उनका जो स्नेह था, वह धीरे धीरे घटने लगा, मेरा जो आदर मान करती थी, उसमें कसर पड़ने लगी और वे कुछ चिन्तित-सी रहने लगीं। परन्तु इससे क्या होता है, मेरी दिनचर्यामें कोई फर्क नहीं आया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि मेरा

इतना सुख-सौभाग्य, इतना लाड़-प्यार देखकर मेरी देवरानियाँ अवश्य ही कुढ़ती रहती थीं; अब उनके चेहरेपर कुछ चमक-दमक दिखाई देने लगी थी।

दवासे क्या होता है—मुझे पीछे मालूम हुआ कि विला-सिताके फेरमें पड़कर मेरे पतिदेव अपना शरीर एकदम नष्ट कर चुके हैं, कई बार उनपर रोगोंका भयंकर आक्रमण हुआ, पर माताकी सुश्रूषा और औषधियोंके बलपर ही मानो वे अबतक टिके हुए थे। प्रथम स्त्रीके स्वर्गकालके बाद आपने जो विवाह न किया, उसका और कोई मतलब नहीं था। उसका सारा बल यही था कि उनका जीवन वेश्या-ओंके संसर्गमें ही बीतता था। बाग-बग़ीचे, नाच-मुहफ़िल इसीमें आप मस्त रहते थे—इसीमें आपने अपना शरीर यों नष्ट कर डाला था। इसके बाद एकाएक मेरे सौन्दर्यकी खबर आपके कानोंमें पड़ी। आप मुझे व्याह लाये।

बीमार होनेका आपने बहाना किया था, पर वास्तवमें कुछ दिन बाद ही आप दवासे बीमार हो गये। जोरका ज्वर आने लगा—शरीरमें शक्ति भर देनेके लिये किसी वैद्यने आपको विष प्रयोग वाली दवा खिला दी। पर लाभ तो तब हो, जब शरीरमें कुछ तत्व हो। बीज ही नहीं तो सींचनेसे अंकुर कहांसे आयेंगे। ज्वर, और जोरोंका ज्वर आने लगा विषने फेफ़ड़ों पर अपनी क्रिया आरम्भ कर दी। कफका बेग हुआ। उसके साथ रक्तके छींटें।

बहुत इलाज हुआ, वैद्य-डाक्टरोंकी जेब खूब भरी जाने लगी। पर बीमारी घटनेके बदले बढ़ती ही गयी। इधर ज्यों-ज्यों बीमारी बढ़ती चली, त्यों-त्यों मेरे अपमान और निरादरकी मात्रा भी बढ़ती गयी। अन्तमें वह भीषण दिवस आ पहुंचा, जिसकी कोई भी प्रतीक्षा नहीं करता। एक दिन रात्रिके तीन बजे कफका वेग खूब बढ़ा और ज्वरने अपनी राह ली। सारा शरीर ठण्ढा पड़ने लगा। सारी औषधियां—समस्त सेवा शुश्रूषा—विफल होने लगी।

इस समय मैं उनके सिरहाने बैठी हुई थी और उनकी माता पायतानेकी ओर। एकाएक उनके ज्ञानचक्षु मानो खुल गये। उन्होंने अपनी माताकी ओर देखा और बहुत ही धीमी आवाज़में सबको बाहर चले जानेके लिये कहा। सभी उस कमरेसे बाहर निकल आये। मैं भी उनके साथ ही चली थी, परन्तु उन्होंने रोक लिया। इसके बाद मुझे अपने पास बुला, आँखोंमें आंसू भरकर बोले—"प्रियम्वदा! मैं अब घण्टे दो घण्टेका ही मेहमान हूँ। अपनी अवस्था अच्छी तरह समझ रहा हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि तुमसे विवाह-करके मैंने बड़ा भारी पाप किया है, तुम्हारे मनको बहुत कष्ट पहुंचाया है; तुम्हारा सारा जीवन ही नष्ट कर दिया है। पर उस समय आँखोंपर पट्टी बँधी थी, अब इस अन्त कालमें आँखें खुल गयी हैं। आशा है, तुम मुझे क्षमा करोगी।"

मैं क्या उत्तर दूं। हृदयमें तो न जाने क्या-क्या हो

रहा था, मन न जाने कैसा कर रहा था ; मेरी ज़बान न जाने क्या कहनेको तैयार थी, पर सब जहाँके तहाँ रह गये। आँखोंसे आँसू उमड़ पड़े। मैं कुछ बोल न सकी।

पतिदेवने तकियेके नीचे हाथ डालनेका इशारा किया। एक बड़ा लम्बा-चौड़ा लिफ़ाफ़ा रखा था। लिफ़ाफ़ा निकाल कर मैंने उनके काँपते हुए हाथमें दे दिया। उसको हाथमें लेकर मेरी ओर बढ़ाते हुए पतिदेवने कहा—"इसमें लाख रुपयोंकी सम्पत्ति तुम्हारे नाम लिखी है। मैं जानता हूं कि मेरे घरवाले तुम्हें बहुत कष्ट देंगे, पर क्या करोगी! भाग्यमें यही बदा था। इसे तुम अपने पास रखो, समय पर काम देगा।"

इतना कह कर उन्होंने वह लिफ़ाफ़ा मेरी ओर बढ़ाया। मैंने उसे अपने हाथमें ले लिया। मेरा हाथ काँप उठा। मानो यह कटे पर नमक अथवा विषका घूंट हो। अब तककी सभी घटनायें आँखोंके आगे आ गयीं--भविष्यका अन्धकारमय दृश्य भी अन्तश्चक्षुमें झिलमिला उठा। बिजलीकी तेज रौशनी उनको सहन न होती थी, इसलिये शमादानमें मोमबत्ती जल रही थी। मैंने इतना कहकर कि "जब तुम ही नहीं तो यह मेरे किस कामका है।" उस काग़ज़को मोमबत्ती की लौसे लगा दिया। एक बार जोरसे आँच बली। सब स्वाहा हो गया। पतिदेवने कहा—"हाय! यह क्या किया!"

कमरेमें तेज रौशनी फैलती देखकर मेरी सास और देवर दौड़ आये। मैं उस स्थानसे हटकर उसी सोफ़ा पर जा बैठी। उन लोगोंने पूछा—"रौशनी कैसी थी?" मैंने वह राख दिखा दी। पतिदेवने विकल होकर मुंह फेर लिया। फिर किसीने भी न पूछा, कि यह राख कैसी है। सब असल घटना मानो समझ गये। उनका चेहरा यद्यपि सुस्त था; पर हृदयमें प्रसन्नता—मानो ये घटनाएं और मेरे पतिदेवका कथन वे पर्देकी ओटसे सुन रहे थे। ऐसा ही होता है, स्वार्थ इसी तरह हृदय-पटलपर काली चादर डाल देता है।

मेरी आँखोंमें आंसू भरे थे। पर हृदयमें अनन्त ज्वाला थी, जो आज तक न बुझी। वह आंच जो चिताकी आंचसे ही ठण्ढी होगी—विषको उतारनेके लिये विषकी ही जरूरत रहती है।

उधर सूर्योदय हुआ, इधर मेरे जीवनसूर्य—सौभाग्य चिन्ह का अस्त। सारे घरमें कुहराम मच गया, रोनेकी कौन कहे मैं तो उस समय पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बेहोश हो गयी। पर क्या यह प्रेमीके वियोगके कारण था—अथवा अन्तर्दाहके कारण या हृदयकी ज्वाला?—यह बहुत सोचने पर भी आज तक मैं निर्णय न कर सकी।

चौथा परिच्छेद

विधवा।

मैं विधवा हो गयी। नारी-जीवनकी समस्त आशाओं और अभिलाषाओंपर पानी फिर गया! ओह! क्या सोचा था, और क्या हो गया!! एक तो ससुराल आकर ही जान गयी थी, कि मेरे जीवनकी साध पूरी होने की नहीं है। दूसरे परमात्माने यह क्या कर दिया! विधवा क्यों हो गयी, मानों मेरे ऊपर विपत्तिका पहाड़ ढह पड़ा। दिन-रात मानों मैं किसी भयंकर ज्वालामुखीकी लपटोंमें जलने लगी। हाय! इतना रूप और यौवन, चढ़ती जवानी और यह आपदा!

मैं पहले ही कह चुकी हूं, कि पिताकी मैं बहुत दुलारी थी, मायकेमें मुझे दुःखकी हवा तक न लगने पायी थी, ससुराल आकर भी मेरी वही अवस्था बन रही थी। सास का आदर-मान मैंने वैसा ही प्राप्त किया था। मेरे भाग्य में तो सुख बदा ही न था। सुख ही रहा होता तो क्या मैं विधवा हो जाती—मेरा सौभाग्य-सिन्दूर इतनी जल्दी पोंछ डाला जाता। अस्तु, जो होना था सो हो गया।

विधवा होते ही मानो मुझपर अत्याचारोंका आरम्भ

हो गया। मैं एक वह जीव समझी जाने लगी, जो निरर्थक है, जिसके जीवनका कोई भी मूल्य नहीं है और जो उस तृणके समान है, जिसे जो चाहे रौंद डाले—तोड़ मरोड़-कर चकनाचूर कर डाले। इसी लिये मानो मेरे समस्त अलंकार—सभी ज़ेवर उतार लिये गये। मेरे हाथकी चूड़ियाँ तोड़ डाली गयीं, अच्छे वस्त्र-आभूषण सासने अपने अधिकारमें कर लिये। वह सुसज्जित कमरा जिसमें मेरा शयन-गृह था, कुछ दिनों तक तो बन्द पड़ा रहा, इसके बाद मेरे बड़े देवर अर्थात् मेरे पतिके मँझले भाईने उसपर अधिकार जमा लिया। मुझे रहनेके लिये एक छोटी सी कोठरी दे दी गयी। इसके बाद ही मेरी घोर दुर्दशा आरम्भ हुई।

मुझे रोनेके सिवा और कोई काम न था। एक तो मैं आपदाओंके नीचे स्वयं ही दब रही थी, दूसरे दिन-रात मुझ-पर वाक्य-वाण चला करते थे। उठते-बैठते, रोते कलपते ही सासकी तीव्र जिह्वा मुझपर सदा ही खड्ग-हस्त रहती थी। "मैंने ही आकर उनका घर चौपट कर दिया—मैं ही उनके लड़केको खा गयी।" यह तो मानो अब उनके लिये सखुन तकिया हो गया। मुझे भोजन अवश्य मिलता था, पर सुखसे नहीं। उस समय भी कुछ न कुछ वाक्य-वाण चलते ही थे। राक्षसीकी उपमा मिल ही जाती थी।

तो क्या मैं सचमुच राक्षसी थी? मैं ही अपने पति या सासके लाड़ले लड़केको खा गयी थी? क्या मेरे ही दोषसे पति-

परलोक सिधार गये थे ? अथवा यह उनके अत्याचार और दुराचारोंका परिणाम था या उनके विलास-मय जीवनका नतीजा था। कुछ भी हो, दोष मेरे ही माथे मढ़ा गया था।

एक दिन सन्ध्याका समय था। मैं अपनी उस कोठरी में एक मैली साड़ी पहने अपने भाग्यपर खीझ रही थी कि एकाएक वही प्रौढ़ा दासी, जिसने पहले दिन मेरा शृंगार किया था, वहाँ आ पहुंची। वह मुझे रोती देखकर मुझे समझाने-बुझाने लगी। कितनी ही तरहकी बातें समझा-कर उसने मुझे आश्वासन देना चाहा, इसी बीच कहीं सास भी उधर ही आ निकलीं। मुझे रोते और उस दासीको समझाते बुझाते देखकर एक दम गर्म हो उठीं। गरज कर बोलीं—"तू यहाँ क्या कर रही है ? और इस भरी सन्ध्याके समय क्या यह बैठ कर रो रही है ? एकको तो खा गयी ; क्या औरोंको भी चाट जायगी ? कहाँ की अभागिन मेरे घरमें आपहुंची है। दिन-रातका यह रोना !—यह रोना नहीं है— हम लोगोंका और भी बुरा मनाना है।"

सासकी यह बात सुन बदनमें आग लग गयी। वह प्रौढ़ा दासी तो मेरे पाससे खिसक गयी, पर मुझसे यह सहन न हो सका। बोल उठी—"रोऊँ नहीं तो और क्या करूं, मुझे रोनेके सिवा और काम ही क्या है ?"

सुनते ही सासके मिजाज़का पारा आस्मान पर चढ़

गया। उन्होंने बिगड़कर कहा—"एक तो भाग्य फूटा दूसरे यह मुंह! इतनी तेज़ ज़बान! मेरी ही बातोंका उत्तर प्रत्युत्तर! खबरदार! जो मुझसे मुंह लगी है, ज़बान पकड़ कर खींच लूंगी।" इतना कह गरजती, हाँफती वहांसे चली गयीं। मेरे देवरकी स्त्री मझली बहूने यह सुनकर कहा—"वाह! अच्छी बहू आयी हैं—ये तो इस घरको चौपट कर डालेंगी—इनकी बोल-चाल सुनकर दूसरे भी वैसा ही करेंगे! भला बड़ोंकी बातोंका कोई जवाब देता है। चुप ही रह जातीं तो क्या होता?"

सासने कहा—"मैं भी ऐसी वैसी नहीं हूं—देखो तो किस तरह सीधी कर देती हूं।"

उसी दिवस इस बातका अन्त नहीं हुआ। मझली बहूने रातमें अपने पति, जो अब इस घरके मालिक थे, उनसे कुछ नमक-मिर्च लगाकर कहा। छोटीसी बात, तिलका ताड़ बन गयी। उन्होंने दूसरे दिन मेरी कोठरीके आगेसे जाते हुए–दासीको पुकार कर कहा—"नयी भाभीसे कह दे, अपनी ज़बान रोक कर रहा करें, यह भले घरकी चाल नहीं है। नहीं तो अच्छा न होगा।"

मैं तो आप ही जल रही थी। मेरे शरीरमें तो आप ही आग बलती रहती थी, फिर यह कटेपर नमक क्यों? हा! विधवा जीवन क्या यह ऐसा ही घृणित है? क्या इसका समस्त सुख पतिके साथ ही अन्त हो जाता है?

माँ से जाकर बोले—"मैं यह क्या सुन रहा हूं, क्या नयी भाभीने कल तुमको कुछ कह दिया था ? यह तो बहुत बुरी बात है।"

मेरी सासने कहा—"जैसे घरकी लड़की वह लाया था, उसका नतीजा और क्या हो सकता है ? बबूरमें कांटोंके सिवा और क्या होगा।"

उस दिवस मैं दिनभर भूखी ही पड़ी रही। आज दासी जब मुझे भोजनके लिये बुलाने आयी तो मैंने कह दिया, कि भूख नहीं है। वास्तवमें भूख नहीं थी, पेट तो इन बातोंको सुनकर ही भर गया था। फिर कोई बुलाने भी नहीं आया। सारा दिन यों ही बीत गया। शामके वक्त भी मैं अपनी कोठरीसे बाहर न निकली। दुर्भाग्य था, उस दूसरी दासी का। उसे मेरी दुर्दशापर कुछ दया आ गयी। उसके मुंहसे कहीं निकल पड़ा—"आज बड़ी बहूने तो दिनभर कुछ नहीं खाया—कोई उनको बुलाकर खिला देता तो क्या वे दिनभर इस तरह अन्न-जल बिना पड़ी रह जातीं। वह तो आप ही विपत्तिमें पड़ी हैं, तिस पर सब कोई उनपर और भी गर्म होते हैं! क्या ऐसी अवस्थामें दिमाग ठिकाने रहता है ?"

फिर क्या था, मझली बहूकी ज़बान खुल गयी। पहले तो उसने ही उस दासी को खूब फटकारा, फिर जाकर अपनी सासको बुला लायी। उससे सारा हाल कहा। वे भी खूब ही गर्म हुईं। लछमनिया दासी निकाल बाहर की गयी।

उसी समय उसको जवाब दे दिया गया। उसे जवाब देकर सास मेरी ओर पलट पड़ीं। मुझे भी जो कुछ कहते बन पड़ा—कहनेसे बाज़ न आयीं। दिन भरकी भूखी-प्यासी सन्ध्याको कोई समझा बुझाकर खिला-पिला देता, यह तो हुआ नहीं। हुई मेरी दुर्दशा! मेरा तो भाग्य ही फूटा था, सुननेकी पात्री ही थी, पर मेरे साथ मेरे माता-पिताका भी उद्धार हो गया! नीच पापी टुकड़खोर—आदि कितने ही शब्दोंसे उनका भी खूब सम्मान दिया गया।

अपने जीवन पर बड़ी घृणा हुई। नारी जीवनपर आक्राश! मेरा क्या दोष है, मैं क्यों पद-पदपर इस तरह लांछित और अपमानित की जाती हूं! मैंने किसीका क्या बिगाड़ा है! न मेरी वजहसे मेरे पतिदेव ही सुरपुर गये हैं और न मैं जबर्दस्ती इस घरमें आयी ही हूं। फिर क्या कारण है कि वे इस तरहका व्यवहार कर रहे हैं? आखिर इनकी इच्छा क्या है? खूब सोचा। सोचते-सोचते मानो सर भन्ना उठा! अन्तमें इसी निर्णयपर पहुंची कि मेरा जीवन व्यर्थ समझा जा रहा है—मैं लोगोंको भार स्वरूप हो रही हूं।

पहले कह चुकी हूं, कि मेरे पति तीन भाई थे। इनमें सबसे छोटा तारानाथ बड़ा ही हँसमुख था। था तो वह भी युवा ही, पर बड़ा ही हँसोड़ और सज्जन! जबसे मैं अपनी ससुराल आयी, तबसे ही वह मुझसे विशेष हिलमिल गया

था। हमेशा मेरे पास उठता बैठता; और बातें किया करता था। वह घरेलू झगड़ोंमें विशेष सम्मिलित भी न होता था। उसे मेरी यह दुर्दशा पसन्द न थी। नहीं कह सकती कि क्या कारण था; पर जिस समय मेरा शयनगृह छीनकर मझले भाईको दिया गया, उस समय भी उसने आपत्ति की, और जिस समय मेरे सब जेवर उतार कर सासने अपनी पेटीमें भर रखना चाहा, उस समय भी उसने टोका। कहा, "भाभी-के मन पर इन कार्योंसे आघात पहुंचेगा। वे अब इसी घरकी हैं, उनके हृदयमें कष्ट पहुंचाना उचित नहीं है।" पर उसकी बातोंपर किसीने ध्यान नहीं दिया। सासने कहा—"अच्छा, अच्छा; तू अपनी ज़बान बन्द रख! अभी लड़का है—इन बातोंको क्या जाने! अब वह जेवर लेकर क्या करेगी? किसको पहनकर दिखायेगी? उसका तो भाग्य ही खोटा है।" तारानाथ भी चुप हो गये। पर उसके भाव-भंगीसे ही मालूम हो गया कि उसको यह बात नहीं जँची।

इसी तरह कितनीही घटनाओंमें तारानाथने मेरा पक्ष लिया। इस समय वे मैट्रिकमें पढ़ रहे थे। मालूम होता था कि होनहार है। तारानाथने आजकी घटना सुनी। रातके नौ बजे, जिस समय उसे यह समाचार मालूम हुआ, उसी समय चुपचाप थोड़ी मिठाई लिये, मेरे कमरेमें आ पहुंचा। बहुत आग्रह करने लगा।

खाना-ही-पड़ा। पर विपत्ति जब आनेको रहती है, तो चारो ओरसे ही आने लगती है। मेरी सासकी सतर्क दृष्टिसे यह बात छिपी न रह सकी। अभी दो चार ग्रास ही मुंहमें डाले होंगे, कि आ धमकीं और हाथसे दोना लेकर फेंक दिया। तमक कर बोलीं—"बड़ी चटोरी जीभ है, घरकी रसोई अच्छी नहीं लगती, बाज़ारका दोना चाटनेकी भूख थी। अब भूख कहाँसे आ गयी? (तारानाथ की ओर देखकर) इसे पैसे किसने दिये और कौन लाया?"

तारानाथने शान्त स्वर में कहा—"मुझे अभी मालूम हुआ, कि भाभीने दिन भरसे कुछ नहीं खाया। तुम लोगोंने आग्रह कर जबर्दस्ती इन्हें खिलाया भी नहीं, इसी लिये, मैं बाजारसे मिठाई मँगवा कर ले आया हूँ।"

सासने कहा—"तू क्यों ले आया? तुझे क्या गरज पड़ी थी? अब क्या तूही इस घरका मालिक हो गया? मैं कोई नहीं रही? खबरदार, जो आजसे इस पापिनके पास आया है। जा यहाँसे।"

तारानाथकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोला—"इन्होंने क्या पाप किया है? पाप तो हम लोग कर रहे हैं, जो इन्हें कष्ट दे रहे हैं।"

सासकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने जोरसे ज़मीनपर हाथ पटककर कह "अभागा! इसके पास मत आया कर, यह तुझे ख

जायगी।" इसके बाद मेरी ओर देखकर बोलीं—"खबरदार जो आजसे इससे बातें की हैं।"

इतना कहकर तारानाथका हाथ पकड़ खींचती हुई, जोरसे पैर पटकतीं, वहाँसे चली गयीं। मैं तो यह काण्ड देखकर अवाक् रह गई। यह मानवी है या राक्षसी? इस घरमें भला यों कितने दिन गुजर होगी।

पर दिन तो बीतना ही जानते हैं, किसी तरह बीतते ही हैं। इस अत्याचार और घोर दुर्दशामें भी इसी तरह दिन बीतने लगे। तारानाथका उस दिनसे प्रत्यक्ष रूपसे मेरे पास आना और हँसना-बोलना बन्द हो गया। मुझे तारानाथका बड़ा भरोसा था। जैसा ही सुन्दर वैसा ही सज्जन! जैसा ही हँसमुख वैसा ही सच्चा। सासके इस व्यवहार पर, मेरे हृदयमें कड़ी चोट आयी। इस चोटका सम्हालना सहज काम न था। पर मैं तो थी भाग्यकी खोटी, सह गयी यह चोट भी। पर रात भर बिस्तरपर करवट बदलती रोती रही। हाय! फिर किसीने मेरी खबर न ली—उस रातमें मेरे हृदयमें जो कष्ट पहुंचा वह अकथनीय है।

मजा तो यह कि सास भी विधवा थीं। बालविधवा जीवनका न सही, पर विधवा-जीवनके कष्टोंका उन को भी कुछ न कुछ आभास मिल चुका था। उन्हें उचित था कि जरा स्नेहसे मुझे अपने पास रखतीं; अपने

पासही सुलातीं और मेरे सब कष्टोंपर ध्यान देतीं, —यदि ऐसा होता, तो सम्भव था कि मैं कुछ दूसरी ही होती, मेरी जीवन नौका में इतने धक्के न लगते और वह इस तरह उलट न जाती, परन्तु न जाने क्यों सासने इन बातोंपर बिल्कुल ही ध्यान न दिया। वे अब तक मेरे परलोक गत श्वसुरका सुसज्जित कमरा अपने अधिकारमें किये हुए थीं और अकेली ही वहाँ सोती थीं।

तारानाथने मुझे छोड़ा नहीं; वे अब भी मेरी साससे लुक छिपकर, अपनी माताकी दृष्टि बचाकर, जब मौका मिलता, तभी मेरे पास आते तथा आश्वासन और प्रेम भरी बातों से मुझपर अपना आन्तरिक अनुराग दिखा जाते थे। उनकी बोलीमें रस था। हृदयमें सहानुभूति थी, पर अपनी माताकी प्रकृतिसे वे लाचार थे।

उस दिनसे लछिमनिया दासी तो निकाल दी गई; पर अब काममें अड़चन पड़ने लगी; मझले देवरके लड़कों की चोटी, उनकी देख-रेख, सम्हाल तथा घरके अन्य कितने ही कामों में अड़चन आ गयी। सासके आगे इस अभावकी शिकायतें पहुंचने लगीं। एक दिन मैं उसी जगह बैठी हुई थी। मेरे सामने ही मेरी देवरानीने दासी की कमीके कारण उत्पन्न हुए कष्टोंका उल्लेख किया। सास की तिर्छी दृष्टि मुझपर पड़ी। उन्होंने मुझे लक्ष्य करके कहा— "आखिर यह दिनभर बैठी-बैठी क्या करती है? फ़िज़ूल

खर्च बढ़ानेकी क्या जरूरत है, यह सब काम इसके ही सुपूर्द करो।"

मेरी देवरानीने मुस्कुरा कर मेरे चेहरेकी ओर देखा। मेरा सारा शरीर जल उठा। उस स्थानसे उठ कर मैं अपने कैद-खाने—उस कोठरी में चली आई। देवरानीकी इस दृष्टिने मेरा हृदय छेद दिया, पर चले आनेसे ही क्या होता था? करना वही पड़ा। हाय! एक दिन वह था कि सासने मुझसे कहा था, कि तू इस घरकी मालकिन है और आज;—आज मैं दासी नियुक्त हुई; हाय रे ललाटकी लिखन!

अपने जीवनपर बड़ी ही घृणा उत्पन्न हो गई। मैंने इस बार खुले शब्दोंमें विरोध करना स्थिर किया और वही किया। खूब कलह मची और सासने अपना असली रूप भी अच्छी तरह प्रकट कर दिया। पर जब बात बढ़ गयी, तब दासियोंने और आने जाने वाली स्त्रियोंने बीच बचाव कर दिया। बात दब गयी। वही लछम-नियाँ फिर बुला कर रक्खी गई। पर मैं सासकी दृष्टि से और भी गिर गई। अब वह इस बातका मौक़ा ढूंढा करती थीं कि कब अवसर मिल जावे और मुझे दो-चार बातें सुना दे और मेरी मझली देवरानी—इस घरके मालिककी स्त्री मानो मेरा काल हो रही थी।

इधर तो ये अत्याचार हो रहे थे, उधर मनने भी कम अत्याचार करना नहीं आरम्भ किया था। वह बारम्बार

मेरे सौन्दर्य, मेरी उठती जवानी और इस अधखिली कली जैसी अवस्थाको लेकर टीका करता था—मानो इन साधनोंको लेकर मेरे हृदयमें काँटे चुभोता था। आइना देखना मैंने छोड़ ही दिया था, पर जब कभी आइनेमें अपना चेहरा देख लेती, तभी हृदयमें हाहाकार मच उठता—दुःखकी ज्वाला और भी धधक उठती थी। यही खयाल होता था—यह जीवन निरर्थक जा रहा है और ससुरालमें आनेपर प्रथम रात्रिकी वह रूपछटा आँखोंके सामने छा जाती थी।

पर इससे क्या होता है। इतना दुःख, इतना अत्याचार और वाक्य-बाणोंसे बिधते रहने परभी रूप निखरता ही जाता था। कहना अच्छा नहीं, नारी मुखसे शोभा नहीं पाता, पर जब सभी कहने बैठी हूं, तब यह भी कहना ही पड़ता है कि इन अत्याचारोंकी ज्वालासे भी बढ़कर एक और भी ज्वाला केवल हृदयमें ही नहीं सारे शरीरमें धधका करती थी। जब कभी सधवा स्त्रियोंपर दृष्टि पड़ जाती, जब अपनी देवरानीको शृंगारकर रात्रिके समय अपने रङ्ग-महलमें हँसते, पान चबाते जाते देखती; उस समय एक विचित्र भाव मनमें पैदा हो जाता था। उस समय वह अन्तर्ज्वाला और भी जोरोंसे धधक उठती। यह कामकी चपेट थी। शरीरमें तो इसका वास है ही, पर संगसे इसका वेग और भी बढ़ उठता है। यह संग शारीरिक भले ही न हो, दृष्टिका ही हो, दूसरोंकी की हुई क्रियाका ध्यान ही क्यों न हो, यह

सारे भावोंको भड़का देने और सारे शरीरमें आगकी लपट लपेट देनेके लिये काफी होता है। जब कभी लछमनियाँ मेरे सामने आकर कहती—"हाय ! इतना रूप और इतना दुःख" उस समय हृदयमें जो दर्द पैदा होता था, वह कहनेका नहीं है। यही लछमनियाँ पीछे मेरी शत्रु हुई, इसी तरह कह कहकर उसने मेरे हृदय पर चोट पहुंचाना और धीरे-धीरे मेरे रसातल का पथ प्रशस्त करना आरम्भ कर दिया था। और सबसे अधिक पथ प्रशस्त किया, मेरी सासने। यदि वे मेरे दुःख कष्टोंको समझतीं तो यों मेरी दुर्गति न होती। अस्तु।

नित्य ही अपनी सखी, सहेलियों और देवरानियोंके आचरणका ध्यान रात्रिमें आता था। नित्य ही एक ज्वाला धधकती थी। उस समय समाजपर और अपने पिता-मातापर भी क्रोध आता था। रुपयेका लोभी समाज, रुपयेके लोभी पिता और रूपके लोभी मेरे अनुप युक्त परलोक पथके पथिक मेरे पति—इन तीनोंने मिलकर आज मेरी यह दुर्दशा की थी।

पतिदेवको परलोक पधारे कई मास हो चुके थे। अब उनको लोग भूलसे रहे थे। कभी कभी मेरी दुर्दशा करनेके समय अलबत्ता उनका उल्लेख हो जाया करता था। यद्यपि मैंने दासी वृत्तिका विरोध किया था तथापि एक दिन बात ही बातमें रसोईदारिन लड़कर चली गयी थी, उस दिनसे

रसोई बनाना मेरा ही काम हो गया था। सास ठहरीं वृद्धा। चूल्हेके पास बैठनेसे ही उनको सरदर्द पैदा हो जाता था। मँझली देवरानीको अपने बाल-बच्चोंसे फुर्सत न थी और सबसे बड़ी बात तो यह थी, कि वे ठहरीं अब मालकिन—उन्हें क्या रसोई बनाना शोभा देता था ? अतएव यह मेरे ही लिये शोभाका काम था। अब मैं ही नित्य रसोई बनाती, खिलाती और अन्य कुछ कार्य कर दिया करती थी। स्मरण नहीं कि देवरानीको कभो मेरी रसोई पसन्द आयी हो ! पर तारानाथ ! उसे मेरे हाथकी रसोई सबसे अधिक भाती थी—और इसी बहाने कुछ देरतक मेरे सामने बैठकर मेरी इस विद्याकी वह प्रशंसा करता और मेरी बड़ाई करता हुआ खाता था।

न जाने क्यों, तारानाथपर मेरा सारा स्नेह उमड़ पड़ा था। तारानाथको रसोई अच्छी लगती है, तारानाथसे कुछ देर बातें करनेका मौक़ा मिल जाता है—इसलिये मुझे रसोई बनानेमें भी मज़ा आता था। यद्यपि कभी रसोई बनानेका काम न करनेके कारण मुझे कष्ट होता था, पर इस कष्टमें भी तारानाथ एक आनन्दका कारण हो रहा था। उसकी सहानुभूति-भरी बातें और चाँदसा मुखड़ा मुझे बहुत ही प्यारा लगता था। ऐसा ही होता है। दुःखमें सहानुभूति बहुत प्यारी मालूम होती है।

मैं कभी-कभी अपने हृदयको अवश्य ही टटोला करती

थी। सारा घर मेरे विपक्षमें हो रहा है। मानो मैं इस घरकी काँटा हूँ! पर तारानाथकी मुझपर इतनी कृपा क्यों है? इसके भीतर क्या रहस्य है? साथ ही मेरा मन भी उसके प्रति इतना क्यों आकृष्ट हो रहा है? क्यों तारानाथ अच्छा मालूम होता है! कहीं पाप तो छिपा हुआ नहीं है—लालसाकी आग तो नहीं सुलग रही है?

कई दिनों तक इसी प्रश्नपर विचार करती रही। ज्यों ज्यों विचार करती थी, जितना ही तारानाथके विषयमें मैं सोचती थी, उतना ही मालूम होता था कि मैं उसके निकट होती जाती हूँ और तारानाथ—उसके व्यवहारमें यद्यपि सिवा सहानुभूति और स्नेहके कोई बात नहीं दिखाई देती थी, पर इतना अवश्य मालूम होता था कि वह मुझसे मिलने, मुझसे बातें करने और मेरे पास बैठे रहनेके लिये व्याकुल रहता है। यद्यपि उनकी माताकी सतर्क दृष्टि इस ओर भी थी; परन्तु तारानाथ भी अपने मनकी करनेसे बाज़ नहीं आता था। तिसपर वर्तमान युगका देवर-भौजाईका रिश्ता!

सीता और लक्ष्मणके सम्बन्ध तथा मनोभावोंकी बात तो नहीं कह सकती, मैं ठहरी कलियुगकी; पर इतना अवश्य कह सकती हूं कि मेरा स्नेह अबतक पवित्र था, मेरे हृदयमें उसके प्रति निकटता उपस्थित हो जानेपर भी अब तक लालसाकी आग न जली थी।

किसी तरह एक वर्षका समय बीत गया। पतिदेवका

वार्षिक श्राद्ध धूम-धामसे हो गया। इस एक वर्षके भीतर ही मुझे कितनी आपदाओं और मानसिक कष्टोंका सामना करना पड़ा, उनका वर्णन करना सहज नहीं है। वर्षमें कितने ही त्योहार आते हैं। इन त्योहारोंके अवसरपर मेरी ससुरालमें खासी चहल-पहल रहती थी। पर मैं मानो मुर्दा थी, मुझे कोई पूछता भी न था। मैं उसी अवस्थामें पड़ी रहती थी।

मेरे मँझले देवरके लड़केका मुण्डन था। घरमें खूब धूमधाम मची हुई थी। कितनी ही नाते-रिश्तेकी स्त्रियाँ आयी हुई थीं। मैं भी एक सफेद साड़ी पहने आज कुछ आनन्दमें ही थी। रोते-कलपते तो इतने दिन बीते थे। आज सासकी आज्ञाके अनुसार उनके दिये हुए एक दो आभूषण भी पहने थे। मेरी ससुरालकी चाल थी, कि "यह मुण्डन कालिका देवीके मन्दिरमें जाकर होता था। सभी स्त्रियाँ सज-धजकर मन्दिरमें जानेके लिये तैयार हो गयीं। मैं भी तैयार थी। घरमें बैठे बैठे तबियत भी ऊब उठी थी, पर ज्यों ही मैं चादर लेकर अपनी कोठरीके बाहर निकली, त्यों ही सासने आकर दपटकर कहा—"तू भी जायगी? इस शुभ अवसरपर तेरा जाना न होगा।"

पलट पड़ी अपनी उसी कोठरीमें। समझ गयी कि मेरा मुख अशुभसूचक है। मैं विधवा हूँ। ऐसे कार्योंमें सम्मिलित होनेसे ही अशुभ होगा। सासके इस मनोभावको मैं अच्छी

तरह समझ गयी। अतः जा पड़ी खाटपर और आँखोंसे सावन-भादोंकी वर्षा होने लगी।

ओह! विधवा-जीवन कितना घृणास्पद है, कितना कष्ट दायक है—यह आज अच्छी तरह समझमें आ गया। अपने जीवनपर बड़ी घृणा हुई। मुण्डनकर सब लौट आये, पर मैं अपनी कोठरीसे न निकली। भीतरसे किवाड़ बन्दकर पड़ी रही। किसीने पूछा या पुकारा भी नहीं। सभी अपने अपने रंगमें मस्त थे, आनन्दमें विभोर। मेरी कौन सुध लेता? शामको फिर मौका पाकर तारानाथने ही सुध ली। आकर बहुत समझाया-बुझाया। जाकर भोजनकी थालीपर बैठी। दो-चार ग्रास ही मुँहमें गये होंगे, कि सास आ पहुँचीं। मेरी डबडबायी आँखोंपर नज़र पड़ते ही उनकी ज़बान चल पड़ी। खूब धिक्कारा-फटकारा। बात इतनी ही, कि आज शुभ अवसरपर रोकर मैं उनकी अशुभचिन्तना कर रही हूँ।

क्या ही अच्छा होता, यदि मेरे जीवनका भी पतिदेवके साथ ही अन्त हो जाता। ये विडम्बनाएँ तो न सहनी पड़तीं। एक तो विधवावस्थाके कारण इस जवानीमें सब सांसारिक सुखोंसे रहित कर दी गयी, दूसरे पद-पदपर लाञ्छना आरम्भ हो गयी। एकदम मन ऊब उठा। दिन-रात अपनी मृत्युकामना करने लगी। दिवस-रात्रि यही सोचने लगी, कि अब मेरे जीवनकी क्या जरूरत है।

मेरे पतिदेव शायद इन बातोंको समझते थे। इसीलिये

शायद उन्होंने लाख रुपयोंकी सम्पत्ति मुझे देनी चाही थी, पर उस समय तो मनकी कुछ दूसरी ही अवस्था हो रही थी। अब सोचती हूं कि, यदि वह सम्पत्ति मेरे पास रहती तो शायद इतनी लाञ्छनाएँ न सहनी पड़तीं, शायद उसके लोभसे ये लोग मुझे अपना कर रखते। पर अब भी, विधवा ही सही; मेरा भी इस सम्पत्तिमें कुछ हक़ था। तब क्या इतनी तकलीफें देकर मुझे परलोक भेज, उस हकको ये हजम कर लेना चाहते थे? इसीलिये, इतने उपद्रव खड़े कर रहे थे। कुछ भी हो, अवस्था मेरी ऐसी ही हो रही था।

होली आ गयी थी। सभी आनन्दमें विभोर हो रहे थे। तारानाथने पहले ही कह दिया था—"भाभी! होली आ रही है। मुँह बनाये रहनेसे काम न चलेगा।" आज होलीके दिवस सबकी अभिलाषाएँ जब पूर्ण मात्रामें जागरित रहती हैं, जब सभी आनन्दमें मतवाले रहते हैं, जब सबके मनोंमें उमंगोंकी भरमार रहती है, तब मुझे क्यों न हो? हाँ, मैं विधवा थी—मेरे लिये ये सभी बातें शास्त्रविरुद्ध थीं। विधवा होनेसे ही रंगी साड़ी तक पहननेका अधिकार चला जाता है। विधवा हो जानेसे ही मानों मन भी सफेद हो जाता है। मन बदले या न बदले अथवा मनकी वासनाएँ, अभावके कारण और भी प्रबल हो उठें, तृप्त न होनेके कारण और भी धधक उठें, पर मन मारकर रहना ही पड़ता है—यही शास्त्रका वचन है—यही हिन्दूधर्मकी मर्यादा। पर यही मर्यादा उन

पुरुषोंपर लागू नहीं होती, जो एकके मरते ही दूसरा विवाह कर लेते हैं, जो थोड़े दिन भी धीरज नहीं धर सकते और जो स्त्रियोंमें सोलह गुण कामका डंका पीटते रहनेपर भी स्वयं एक स्त्रीके मरते ही तुरन्त तृप्तिका साधन ढूँढ़ने लगते हैं। शायद परमात्माने स्त्री-पुरुषके मनकी रचना भी दो ढङ्गसे की हो!

क्या कहती-कहती क्या कहने लगी। होली वाले दिन मेरे घरमें रङ्गकी धूम मच गयी। नाते-रिश्तेके कितने ही पुरुष और स्त्रियाँ निमन्त्रणमें आये। सभी आनन्दमग्न हो रहे थे। मैंने इस अवसरपर अपनी कोठरी छोड़कर बाहर निकलना अनुचित समझा। मनमें चाहे जो हो, चाहे मन कितना भी लालायित हो रहा है, पर शास्त्रकी मर्यादा कुल-बधुओंको माननी ही पड़ती है। इसीलिये मैंने एक सफेद सी साड़ी तो अवश्य पहन ली; पर उस कोठरीके बाहर न निकली। कुछ तारानाथका भी भय था। किसीने बुलाया भी नहीं; कुछ स्त्रियाँ मेरी सज्जनताकी भी प्रशंसा कर गयीं। पर तारानाथ कब चुप रहनेवाला था। उसने तुरन्त ही अपनी मातासे जाकर कहा—"बड़ी भाभी कहाँ हैं, उनको तुम लोगोंने क्यों नहीं बुलाया? जरा उनका भी जी बहल जाता।"

सासने आज और कुछ नहीं कहा। इतना ही बोलीं—"पड़ी होगी अपनी कोठरीमें। उसे क्या रंग खेलना शोभा देता है?"

पर तारानाथ कब मानने वाला था। "अच्छा पकड़ लाता हूँ," कहकर मेरी कोठरीकी ओर पलट पड़ा। माताका प्रतिरोध उसके सामने ही उसने तोड़ दिया। हाथमें रङ्गकी पिचकारी लिये धड़धड़ाता मेरी कोठरीमें चला आया। आतेही उसने मुझे रङ्ग दिया। ठीक कहती हूं—वह रंगकी पिचकारी, हाँ हाँ कहते रहनेपर भी जिस समय उसने मारी है, जिस समय मेरी साड़ी तर हो गई है, उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो किसीने मेरे हृदयमें गोली मार दी—न जाने कहाँ-से बिसरा हुआ सारा दुःख, समस्त शोक और अनन्त ज्वाला हृदयमें उमड़ पड़ी। इसके बाद फिर उसने मुझको पकड़ लिया। लाख मना करनेपर भी मेरे दोनों गालोंमें जबर्दस्ती गुलाल मलकर मुझे लाल कर दिया। इसके बाद भंगकी तरंगमें मनचले तारानाथ कुछ और भी अग्रसर होना चाहता था, उसका मुँह मेरे उभरे हुए लाल-लाल गालों तक आ चुका था, उसने अपने आलिङ्गनपाशमें मुझे अच्छी तरह जकड़ रखा था—कि मैं झिझक उठी। मैंने धक्का देकर उसे हटा दिया। सारे शरीरमें मानो बिजलीकी लपट दौड़ रही थी, हृदय उथल-पुथल हो रहा था। तारानाथ लालच भरी दृष्टिसे मेरी ओर देख रहा था, और मैं अपने मनको दबानेकी चेष्टा कर रही थी। इसके बाद तारानाथने लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया। जबर्दस्ती मुझे खींचता हुआ कोठरीके बाहर ले गया और उसी तरह रँगे वेशमें उस स्थानपर लेजाकर खड़ा

कर दिया, जहाँ उसकी माता कई स्त्रियोंके साथ बैठी हुई बातें कर रही थीं। वहीं ले जाकर बोला—"देखो, जंगलसे यह नयी चिड़िया फँसा लाया हूं।" उसकी बातोंपर सभी हँस पड़ीं, आज उसकी माताको भी कुछ कहनेका साहस न हुआ। मैं काठकी पुतली जैसी खड़ी रही। पड़ोसकी एक स्त्रीने आदरसे मुझे अपने पास बैठा लिया। बोली—"इस बेचारीका तो भाग्य ही खोटा है, जीते रहें इसके देवर, जो इतना भी मनका हौसला मिटा देते हैं।"

सासने भी उसकी हाँ में हाँ मिलायी। मैं थोड़ी देरतक वहाँ बैठी रही; फिर उठकर चली आयी।

अभी अपनी कोठरीमें आकर बैठी ही थी कि तारानाथ घूमता-फिरता फिर आ पहुंचा। आकर मेरे पास बैठ गया। बोला—"नाराज़ तो नहीं हो गई हो?"

मैंने कोई उत्तर न दिया। इस बार उन्होंने साहसकर लछमिनिया दासीके सामनेही मेरी ठुड्डीमें हाथ लगा, मेरा चेहरा जबर्दस्ती अपनी ओर घुमाते हुए कहा,—"बताओ!" इसके बाद उन्होंने उस दृष्टिसे मेरी ओर देखा, जिसमें विष भरा हुआ था, जिससे लालसाकी लपट निकल रही थी और वासना लहर मार रही थी। मैं काँप उठी! सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा! मैंने इतनाही कहा कि "मुझ दुःखियाके पास क्यों आते हो? तुम्हारी माता नाराज़ होंगी।" इतना कहते-कहते आँखोंमें जल भर आया। दो-चार बूँद ढुलक

भी पड़े। तारानाथ मुझे कुछ समझा-बुझा कर चला गया।

मैं मनमें सोचने लगी—यह नयी विपत्ति सिरपर खड़ी हो गयी। तारानाथके लक्षण अच्छे नहीं मालूम होते। क्या करना चाहिये ?

कई दिवस बीत गये। तारानाथका आवागमन जारी रहा। पर होली हो गई थी; इसलिये, फिर कुछ विशेष अग्रसर होने का उसे साहस नहीं हुआ। लछमनिया बार-बार जब अवसर मिलता, तभी तारानाथके स्वभाव और मुझपर उसके प्रेमकी प्रशंसा करती थी।

मैं भी असावधान न थी। अपने हृदयको टटोलती जाती थी। देखती जाती थी कि यह किधर ढुलक रहा है। सब कुछ सोच-समझकर कुछ दिनोंके लिये मायके चले जाना ही मैंने उचित समझा। शायद आग और घीका संयोग ज्वाला उत्पन्न कर दे! साथ ही वहाँ कुछ सुख मिलनेकी भी आशा थी।

अवसर भी अकस्मात् मिल गया। मेरी माता एकाएक बीमार हो गयीं। मुझे बुलाने मनुष्य आ पहुंचा। सासने भी कोई आपत्ति न की। उनके लिये तो मैं एक बला सी थी। मैंने साससे आज्ञा मांगी, उन्होंने विदा कर दिया। मैं फिर अपने मायके आ पहुंची। देखूँ ललाटकी लिखनमें क्या-क्या लिखा है।

—:०:*:०:—

पांचवां परिच्छेद

फिर मायकेमें।

मैं मायके चली आई। किस वेशमें गई थी और किसमें आयी ! माता मुझे इस वेशमें देखते ही बीमार रहनेपर भी जोरसे रो पड़ी—छाती पीट ली। सरके केश नोच डाले और पिता जी ठण्डा साँस ले-लेकर बोले—"हरि इच्छा ! अपना क्या वश है, इसके भाग्यमें यही बदा था—पूर्व जन्मके कर्मोंका फल है।"

सुनतेही सरसे पैर तक मन्ना उठा। इच्छा हुई,—कह दूँ कि यह तुम्हारे ही कर्मोंका फल है—मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका नहीं। आज यदि तुम पैसेके लोभसे आँखोंके अन्धे और बुद्धिके हीन न बन जाते, तो मेरी यह अवस्था न होती। पर इस समय चुप रह जाना ही उचित समझा। बोलनेसे ही बात बढ़ जाती।

परन्तु मेरे आनेका समाचार सुनकर लक्ष्मी आ गयी थी। वह उसी जगह खड़ी थी। सबकी आँखोंमें तो आँसू भरे थे, उसके न हों, ऐसा नहीं ; पर वह पिताका उत्तर सुनते ही ठठाकर हँस पड़ी। यह बेमौकेकी शहनाई सबको बुरी लगी। सभी तिर्छी दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगे। पर वह भी कब

चूकने वाली थी ? तुरन्त ही बोल उठी—"तुम सब मेरी ओर तिर्छी दृष्टिसे क्या देख रहे हो ? मैं ठीकही हँसी हूं, यह प्रियम्वदाके पूर्वजन्मके कर्मोंका फल नहीं है, तुम लोगोंके पापका फल, स्वार्थपरताका नतीजा और पैसा-प्रियताका परिणाम है। इस अबोध बालिकाका सर्वनाशकर तुम लोगोंने अपना घर भरा है। अब उसके भाग्यको दूषण देकर साफ निकल जाना चाहते हो। अपना दोष उसके माथे मढ़ना चाहते हो। प्रियम्वदाको देखनेकी बड़ी इच्छा थी। इसी लिये चली आई हूं, नहीं तो तुम लोगोंके हाथका तो पानी पीना भी पाप है।"

पिताका चेहरा उतर गया, माता सिटपिटाकर चुप हो गयी। पिता बोले--"यह सब तुझसे किसने कह दिया ? आजकल बुद्धि कुछ विशेष बढ़ गयी है क्या ?"

लक्ष्मीने कहा—"क्षमा करना, इसको इस अवस्थामें देखकर कलेजेमें बड़ी चोट पहुँची है। मेरी बातें सत्य हैं या झूठी, एकान्तमें बैठकर विचार करना। और सच तो यह है कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। इसका फिरसे विवाह कर दो और इस तरह अपने पापका प्रायश्चित्त कर डालो।"

पीछे मालूम हुआ कि लक्ष्मीके पति गोकुलचन्द बड़े भारी सुधारक थे। पतिके हृदय और बातोंका प्रतिविम्ब पत्नीपर खासा पड़ चुका था। उन्होंने लक्ष्मीसे विवाह होनेके बाद उसे पढ़ा-लिखाकर पण्डिता बना दिया था।

मेरे विवाहका नाम सुनते ही पिताने दोनों हाथ कानपर

रख लिये। बोले—"राम! राम! राम! ओह लक्ष्मी! तेरी बुद्धि इस सुधारकके साथ रहकर बिल्कुल ही भ्रष्ट हो गयी है। ऐसी बात भी कोई मुँहसे निकालता है—ऐसा सुननेसे ही पाप लगता है। छिः छिः!!"

लक्ष्मीने मुसकुराकर कहा—"जरूर पाप लगता है, पर धनके लोभसे, जीवनभरके दुराचारी, पापी, ऐयाश, शक्ति-हीनके गले अपनी अबोध बालिकाको बाँध देने और उस धनसे स्वयं मौज करनेमें पाप नहीं लगता! धन्य तुम्हारा धर्मज्ञान! धन्य तुम्हारा समाज! भैया! (लक्ष्मी मोती-लालको भैया ही कहती थी) सच तो यह है, कि यदि समाज-पर मेरा कुछ भी अधिकार होता, तो इस विवाहके लिये पहले तुम लोगोंको दण्ड देनेकी व्यवस्था करवाती। आज इस बालिकाको इस अवस्थामें देखकर जो कष्ट माताको होता होगा, वह अन्य किसीको नहीं। पर न जाने क्यों, इसका भविष्य......" इतना कहती कहती वास्तवमें लक्ष्मीकी आँखें लाल हो गयीं। उसने अपनी चादर उठायी और वहाँसे रवाना हो गयी। सीढ़ीपर पहुँच कर बोली—"मोती भैया! मेरी बातोंने तुम्हारे मनपर कड़ी चोट पहुँचायी है, क्षमा करना। अब मैं तुम लोगोंको कष्ट देने न आऊँगी। पर इतना याद रखना, कि इसको कष्ट न होने पाये।"

माताने कुछ न कहा। अपनी खाटपर पड़ी रही। मेरी ओरसे उसका मन कुछ भारी हो गया। बहुत देर

तक रोती रही। मैंने उसे बहुत कुछ समझा-बुझाकर कुछ खिलाया-पिलाया।

माताकी बीमारी कुछ भारी न थी। साधारणसा बुखार आ गया था। अतएव दो ही चार दिनोंमें चंगी हो गयी। इधर मेरे लिये भी उसे कुछ विशेष तरहद न करनी पड़ती थी। दो चार दिन बाद ही माँकी तबियत ज़रा ठीक होते ही भौजाईने रंग बदला। यहाँ भी रसोई मेरे गले पड़ी। विधवा और है किस कामके लिए? धीरे-धीरे सारी गृहस्थीके कामका बोझ मुझपर पड़ने लगा। दिन भर खूब परिश्रम करती। इसी चेष्टामें रहती कि किसीको कोई कष्ट न हो, परन्तु दिन भरमें एकाध बार अवश्य ही पाद्य-पूजा हो जाती थी, किसी न किसीके मुँहकी फटकार सुननी ही पड़ती थी।

सोचा था, माता मुझे हृदयसे लगा कर रखेंगी। पिताका आदर-मान प्राप्त करूँगी। भाई-भौजाई अपनेही ठहरे—वे क्या कष्ट देंगे? पर मायकेमें दो-तीन मास रहनेके बाद ही वे समस्त आशायें, आकाशके फूलकी तरह हो गयीं। समझ गयी, कि पत्नीका समस्त सुख पतिके साथ ही चला जाता है—उसके सौभाग्यकी इति हो जाती है।

ससुरालमें निजका मकान था, पर यहाँ पिता किरायेके मकानमें रहते थे। उस मकानमें और भी कितने ही किरायेदार थे। मैंने देखा उनमें कितनोंकी ही दृष्टि मेरे सौन्दर्य-

पर पड़ रहा है। जब अवसर मिलता है, तभी उनमेंसे कितने ही ताक-झाँकमें लगे रहते हैं। अतएव मुझे उनकी दृष्टिसे अपनेको बचाना पड़ता था, साथ ही यह भी ख्याल हो जाता था, कि मेरे कद्रदाँओंकी कमी नहीं है।

मेरे मकानसे बम्बईका प्रसिद्ध लक्ष्मीनारायणका मन्दिर बहुत दूर नहीं पड़ता था। मायके आकर अपना मन बहलानेके लिये मैंने धर्म-चर्चा आरम्भ की। और नहीं कुछ तो नित्य सवेरे जाकर लक्ष्मी-नारायणका दर्शन ही कर आती। जिस समय मैं लक्ष्मीनारायणका दर्शन करनेके लिये घरसे निकलती, उस समय पुरुषोंकी वह प्रलुब्ध दृष्टि मुझपर पड़ती--इस भावसे वे मुझे देखते, मानो अकेली पाते ही वे मुझे हड़प कर जायेंगे। कोई दबी जबानसे मेरी गजगामिनी चालको सराहता, कोई मेरी आँखोंकी तारीफ करता मेरे पाससे निकल जाता, कोई इस झोंकसे आगे बढ़ता, कि मुझसे जरासा अंग स्पर्श ही हो जाये और यदि मेरी असावधानीसे ऐसा हो जाता, तो मानो उसे स्वर्ग ही मिल जाता। हाय! कामके पुतले! येही कहते हैं, "नारीमें सोलह गुणा काम है। नारी नरककी खान है।"

हाँ, मैंने अच्छी तरह अपने मायके आकर अनुभव किया था, कि विधवाजीवनपर तर्स खाना, उसके कष्टोंके कारण आँसू बहाना तो दूरकी बात है—सभी यह धारणा कर लेते हैं कि जब विधवा है, तब अवश्य ही दुराचारिणी

होगी। और जब दुराचारिणी है, तब तो सबके उपभोग-को सामग्री है। "उभाभ्यां रण्डसण्डाभ्यां न दोषो मनुरब्रवीत।"

कुछ भी हो, नैहर आकर मैंने जिस सुखकी आशा की थी, वह न प्राप्त हो सका। मैं चाहती थी, माताका संग। पर दुःखका साथी कोई नहीं होता? अपनी वयःप्राप्त दुःखिता कन्याके कारण माता अपनी सुख-शय्या न त्याग कर सकी। फिर भौजाईको क्या गरज पड़ी थी। ननद भौजाईका झगड़ा जगप्रसिद्ध है। मैं चाहती थी, कि यह झगड़ा न हो, पर ललाटकी लिखन क्या मिटती है? भौजाईने समझा, तीन महीने हो गये, यह ससुराल न लौटी, तब तो यह हम लोगोंके ही गले पड़ी। सम्पत्ति इस घरमें मेरे ही कारण आयी थी। भाईने स्कूल त्यागकर अब तीस रुपये महीनेकी नौकरी आरम्भ की थी, पर हाथमें आयी रकम क्या कोई किसीको देना चाहता है। दुर्योधनने सुईकी नोकके बराबर ज़मीन भी न देनी चाही थी। वे समझीं—यह नयी बला कहाँसे आ धमकी। लगीं प्रत्येक काममें खोट निकालने, बात बातपर आवाज़ कसने और क्षण-क्षणमें अपना रंग बदलने। यहाँ भी छोटीसी घटना तिलका ताड़ बनने लगी। नित्य प्रति कलह मचने लगी। माता यदि मेरा पक्ष लेती तो भौजाईसे झगड़ा हो जाता, बेटेसे मनमुटाव! मुझे ख्याल है, एक दिन पिताने भी कह डाला था, "प्रियम्वदा

यदि जरा दब कर ही रहे तो इतना ऊधम न मचे। इस कलहने तो नाकमें दम कर दिया।"

माताका मन न माना। बोल बैठी—"सब उसका दोष थोड़े हो है।"

पिताने कहा—"मैं सब समझता हूँ, पर फिर भी उसको दब कर रहना चाहिये।" उसी दिन सास-बहूमें भी मेरा पक्ष लेनेके कारण कुछ झगड़ा हो गया। अस्तु।

यहाँ भी मेरे लिये एक अलग कोठरी नियत कर दी गयी थी। थोड़ेसे समानोंके साथ मैं उसीमें रहती थी।

एक दिन अन्धकारमयी रजनीमें जब खूब वर्षा हो रही थी और बादल गरज रहे थे, उस एकान्त कोठरीमें बड़ा भय मालूम हुआ। परन्तु किसे पुकारूँ, कौन उस अँधेरी ठंडो रातमें अपने पतिका पर्यङ्क त्याग कर मेरे पास आती। मनमें बहुत ही कष्ट हुआ। बड़ी ही मनोवेदना पैदा हुई—हाय! यह उम्र और इतना कष्ट! अब सहा नहीं जाता। आज खूब रोयी—इतना रोयी कि बाहरकी वर्षाका वेग और बिजलीकी कड़कड़ाहट मेरे हृदयकी आवाज़ और आँखोंके आँसूसे दब गये।

बाहरी वर्षा तो बन्द हो गयी, पर मेरे नयनोंकी वर्षा मानो आज शान्त होनाही नहीं चाहती थी। इसी समय सामने वाले मकानसे किसीने गाया—"मधुकर प्रेम किये पछतानी।" अर्द्ध रात्रिका समय, विहागकी रस भरी ध्वनि, चारो ओर

गूंज पड़ी। मैंने तुरन्तही उठकर खिड़की खोल दी। सामने जो दृश्य देखा, उसने एक दबी हुई आग धधका दी।

सामनेवाले कमरेके खिड़की-दरवाजे सब खुले थे। सामने ही हारमोनियम रखा हुआ था और एक युवक युवती अगल बगल बैठे प्रेमालाप कर रहे थे। उस युवकनेही गाया था। युवती तनमयतासे उसके चहरेकी ओर देख रही थी। युवकका हाथ युवतीके गलेमें पड़ा हुआ था और चेहरोंसे अनुराग झलक रहा था। खिड़की खुलनेकी आवाज युवकके कानोंमें जा पड़ी। उसने एक बार मेरी ओर देखा, इसके बाद मानो मुझे दिखाकर उस युवतीका मुँह चूम लिया।

ओह! सारा हृदय मानो खौल उठा। एकाएक मनमें ख्याल हो आया। यह तो रखेली है। कितना आदर, मान और प्यार कर रहे हैं। किस तरह प्रेमसे वे अपना दिन बिता रहे हैं। यह मुझसे अधिक रूपवती भी नहीं है। तो क्या मैं यह आदर नहीं प्राप्त कर सकती—क्या मुझे प्रेम नहीं मिल सकता है? याद आ गया कि मैं विधवा हूँ।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि मेरे पिता जिस मुहल्लेमें रहते थे उसमें केवल भद्र परिवारोंकाही वास न था, अतएव मेरे सामनेवाला मकान भी उसी ढंगका था। इसमें बम्बईके दो तीन सेठोंकी रखेलियाँ रहती थीं। जिसका मैं जिक्र कर चुकी हूँ, वह भी सेठ विट्ठलदासकी रखेली थी। नाम था गुलाब! सुन्दर थी। पर मेरा रंगरूप उससे कहीं चढ़ा बढ़ा था। रातमें अकेली

इसी कोठरीमें पड़ी रहती थी। कोई देखने-सुननेवाला था ही नहीं कि मैं क्या करती हूँ। उस दिवससे नित्य रात्रिके समय मैं खिड़की खोलकर छिपी छिपी उनकी प्रेमलीला देखती; अपने दुर्भाग्यको कोसती और गुलाबके सौभाग्यको सराहती थी। पर न जाने क्यों, जब मैं उनकी प्रेमलीला देखती देखती वासनाको प्रज्वलितकर हताशसी होकर पड़ रहती, उस समय एक अज्ञात शक्ति मुझे धिक्कारना आरम्भ कर देती। मेरा मन कहता, यह नित्यका दृष्टि-सङ्ग अच्छा नहीं। यह मेरे अधःपातकी सीढ़ी तैयार हो रही है। उसी समय प्रतिज्ञा कर ली; अब कलसे वह खिड़की ही नहीं खोलूँगी—उधर झाँकूँगी भी नहीं; पर दूसरे दिन समय पातेही सारी प्रतिज्ञाएँ भूल जाती और वही प्रेमलीला देखने लगती। बात यह थी कि उस दृष्टिसंगसे भी कुछ आनन्द मिलता था। ऐसा ही होता है, पापका आवरण ऐसा ही सुखकर होता है। फिर तो यहाँ तक हुआ कि गुलाबसे मुझसे कहीं कहीं रात्रिमें बातें भी होतीं। उसने कहा था कि वह भी विधवा थी। बड़े कष्टमें थी; पर अब बड़ी मौजसे दिन बीतते हैं।

उस समय विधवा हो जानेके कारण मेरे भाईका विवाह रुक गया था। अब फिर विवाहकी तैयारियाँ होने लगी थीं। थोड़े ही दिनोंमें विवाहका सारा इन्तजाम हो गया था। इस समय मेरे पिताके कुछ रिश्तेदार भी बुलाये गये थे। इनके साथ ही एक बड़ाही सुन्दर नवयुवक आया था। इसका नाम

था—रूपचन्द्र ! रूपचन्द्र बड़ाही मनोमोहक था। मेरी भावज का रिश्तेदार था। इसने आतेही अपने व्यवहारसे घरभरको प्रसन्न कर लिया। पर इसकी दृष्टि जब मुझपर पड़ी, तो मानो उसे काठ मार गया। माताके सामने ही बोला-"ओह ! इस अवस्थामें इतना कष्ट !" इसने आनेके साथही घरका रंग ढंग देख, मेरे साथ सहानुभूति प्रकट करनी आरम्भ की। जब कभी मौक़ा पाता, मेरा पक्ष लेकर भौजाई तथा मातासे तक करने बैठ जाता था। उसकी बात बातमें मेरे प्रति हार्दिक वेदना, आन्तरिक सहानुभूति टपकती। कभी तो मेरा पक्ष लेकर भौजाईसे लड़ पड़ता। भौजाईका वह मुँह लगा था। दोनोंमें खूब हँस हँसकर बातें होतीं। नारीसमाजकी अवस्थापर कितने ही तर्क वितर्क होते, विधवाजीवनपर अपना मत प्रकाश करते करते, जब उसकी आँखें भर आतीं, गला भर जाता, उस समय मैं समझती—यह वास्तवमें मनुष्य है, इसके हृदय में प्रेम है, सहानुभूति है और दूसरोंके दुःखसे दु:खी होनेकी उदार भावना है ! मैं उसकी बातें खूब कान लगाकर सुनती थी। एक दिन बैठी बैठी अपने देवर और रूपचन्द्रकी तुलना करने लगी। सोचने लगी— "ससुरालसे आये इतने दिन हो गये। फिर कोई बुलाने भी न आया। अपने देवरके इस व्यवहारपर बड़ा क्षोभ हुआ। मन कचोट उठा। उसी समय मानो किसीने कानोंमें कहा—'सावधान ! किधर बढ़ रही है।'

पर इससे क्या होता है ? लता अवश्यही कोई न कोई आश्रय खोजती है ! पर मेरी जीवनलता—यह कोई आश्रय न मिलनेके कारण मानो मुरझाती चली जाती थी। ध्यानमें आता था—समाजका पाशविक नियम-जिस नियमके कारण मेरा जीवनही नहीं; मेरी जैसी कितनी ही बाल तथा युवती विधवाओंका जीवन नष्ट हो रहा था; देशमें सन्तानोंकी वृद्धि घट रही थी और देशमें अनाचार फैल रहा था। इस समय—

हाँ, कुछ दिन बाद ही मेरे छोटे भाईका विवाह बड़ी धूम धामसे हुआ। इस विवाहमें पिताने अपना सारा हौंसला निकाल लिया। मुझे भी कम प्रसन्नता न हुई। इस विवाह-में मैंने इतना परिश्रम किया कि देखनेवाले तरस खा जाते थे और रूपचन्द्र बार-बार 'शरीर खराब हो जायेगा' भय दिखाकर मुझे रोकता था। उसके सिवा और किसीने भी कभी मुझे मना न किया—लोग समझते थे मानो अब मैं इसी लिये जीवित हूं। पर इसका पुरस्कार क्या मिला, यह आगे देखिये।

विवाह हो गया था। आज भाई बहूको लिवा लाने गये थे। जिस समय वे बहू लेकर लौटे, उस समय नई बहूको देखने और स्वागतकर ले आनेकी लालसा मनमें बेतरह जाग उठी। मैं उस समय दौड़कर दरवाजेपर आ पहुँची। जिस घरमें प्रवेश कर रहे थे, पीछेसे मेरी माता भौजाई तथा अन्य

स्त्रियाँ आईं। इसी समय माताने ज़ोरसे झिड़ककर कहा—"तेरा यहाँ क्या काम है? तू यहाँ क्यों आई है? इस अवसर पर विधवाका मुँह भी नहीं देखना चाहिये। जा, भाग, यहाँसे।"

माताके मुखसे ऐसी बातें—अपनी गर्भधारिणीके ये भाव!! इस समय कलेजेमें जो चोट आयी, वह जिन्दगी भर दूर न हुई। इस चोटसे मैं तिलमिला उठी। उसी समय पलट पड़ी अपनी कोठरीकी ओर, और अपनी निःसहाय निर्बल अवस्थापर आँसू बहाने लगी। ध्यान आया, धिक्कार है, उस जीवनको, और शत शत धिक्कार है, उस मुखपर जिसका देखना पाप समझा जाता है। अहा! मेरा कैसा आदर अपने घरमें हो रहा है। इस समय ठीक मेरी क्या दशा थी; जैसे सैकड़ों बिच्छुओंके एक साथ डंक मारनेपर हो जाती है। फिर उस दिवस कोठरीसे बाहर न निकली। समूचा दिन बीत गया। घरमें उत्सव हो रहा था, आनन्दके फव्वारे छूट रहे थे; पर मेरी खबर लेनेवाला कोई न था। इस शुभ अवसरपर इस विधवाका अशुभ मुख कोई नहीं देखना चाहता था।

बहुत ही अश्रद्धा हुई इस जीवनपर और उससे भी अधिक उस समाजपर जिसमें मेरा जन्म हुआ था। सोचने लगी, जब मायका कैदखाना और ससुराल काल-कोठरी है, तब इस जीवनको रखकर क्या होगा—आज ही इस जीवनका विसर्जन करूँगी।

इसी समय गुलाबका चेहरा मेरी आँखोंके सामने आ गया। सोचने लगी—वह भी तो विधवा थी, मेरी जैसी सुन्दर भी नहीं ; पर उसका जीवन कैसे आनन्दसे बीत रहा है। मेरी प्रतिज्ञामें बाधा पड़ी ! पापका एक बड़ाही सुन्दर और मनोहर रूप मेरी आँखोंके सामने नाचने लगा।

संध्या हुई और रात भी—पर कोई ख़बर लेने न आया। मानो किसीको मेरी सुध ही न हो। एकाएक बारह बजे रातके समय किसीने मेरा दरवाजा खटखटाया। यह खटखटानेकी आवाज उस ढंगकी थी, मानो कोई बहुत ही धीरे धीरे इस ढंगसे खटखटा रहा है कि कोई सुनता न हो। यह कौन है ? एकाएक शरीर काँप उठा ; पर मैंने साहस कर दरवाजा खोल दिया। देखा, रूपचन्द्र खड़ा है।

मैंने पूछा—"तुम इस समय यहाँ क्यों ?"

रूपचन्द्रने कुछ सकुचाकर कहा—"आज दिनभर तुम दिखाई न दीं, संध्यासे भी नहीं, इसी लिये ख़बर लेने आया हूँ।"

मैं—तुम्हें किसने भेजा है ?

रूपचन्द्र—किसीने भी नहीं, तुम्हारी भौजाईके मुँहसे आजकी बातें सुनकर बड़ा दुःख हुआ था, तुम्हें दिनभर न देखकर और भी कष्ट हुआ, इसीलिये चला आया हूँ। तुम्हारा यह सुन्दर रूप, भरी जवानी और कष्ट मुझसे नहीं देखा जाता।"

कह नहीं सकती, वे वाक्य असली थे या नक़ली ; पर उसकी आँखोंमें आँसू अवश्य भरे थे। उसकी आँखोंके आँसू देखकर मनमें कुछ कष्ट हुआ। बोली—"अपने कर्मका भोग भोग रही हूँ, इसमें किसीका क्या चारा है ?"

रूपचन्द्रने कहा—"कैसा कर्मभोग और कैसा भोगना ? तुम तो इस ठाट-बाट और आनन्दसे रह सकती हो, जो रानियोंको भी नसीब न हों। पर बड़े साहसका काम है।"

इसी समय अपनी कोठरीसे गुलाबने गाया—

"सबै दिन नाहिं बराबर जात,
कबहूं कला, बला पुनि कबहूं, कबहूं कहि पछतात।"

एकाएक एक गुप्त प्रवृत्ति जाग उठी। इधर मेरी दुरवस्था उधर गुलाबकी दिन रातकी रंगरेलियाँ ! इधर रूपचन्द्की बातें—सबने एकत्र होकर उस समय मुझे 'किंकर्तव्य विमूढ़'कर डाला। कुछ देरतक टटोलनेवाली दृष्टिसे मेरी ओर देखकर रूप-चन्द्रने कहा—"भला बताओ, यह चम्पा जैसा शरीर क्या यों सुखानेका है ? ये कमल सा आँखें क्या आँसुओंसे भरी रहनेकी चीज़ हैं ? प्रियम्वदा ! तुम्हारा दुःख देखकर वास्तव-में छाती फटती है। मेरा वश चलता तो अवश्यही तुम्हें दुबारा किसी ऐसे पात्रके हाथ सौंप देता, जो तुम्हें गलेका हार बनाकर रखता।"

एकाएक कुछ ख्याल हो आया। मैंने कहा—"रूप-

चन्द्र ! तुम जाओ। मैं विधवा हूं, अबला हूं,--मेरे हृदयमें लालसाकी आग मत भड़काओ।"

इतना कह मैंने भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया। रूपचन्द्रने बाहरसे ही कहा—"अच्छा, मेरी बातोंपर विचार करना। यदि साहस पड़े तो मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगा।"

इस घटनाको कई दिन बीत गये। दूसरे दिन रूप-चन्द्रने भौजाईको खूब फटकारा। अतः दूसरे ही दिन सबेरे माता और भौजाई मुझे मनाकर ले गयीं। रूपचन्द्रकी इस फटकारने बहुत कुछ काम कर दिखाया। उधर मायकेमें मेरी कुछ कठिनाइयाँ हल्की पड़ गयीं और इधर मेरे हृदयमें रूपचन्द्रका कुछ आदर बढ़ गया।

इसके बाद रूपचन्द्रसे बहुत तरहकी बातें हुइं। अन्तमें यह स्थिर हुआ कि यह घर ही त्याग देना चाहिये। मरना भी चाहिये तो मानसे। मायका हो चाहे ससुराल, जहाँ अपना आदर ही नहीं, वहाँ क्या रहना।

अन्तमें किस तरह यह गृह त्यागना होगा, रूपचन्द्र किस तरह मेरी सहायता करेगा, कैसे और क्या साथ लेकर मैं घर त्याग दूँगी, एक मिसराइन कैसे मदद देगी, रूपचन्द्र मुझे कहाँ मिलेंगे, आदि सारा प्लाट तैयार हो गया, प्रतीक्षा थी केवल व्यवहारकी।

यद्यपि यह सारा प्लाट तैयार हो गया था, पर

मन न जाने कैसा हो रहा था। कितनी ही तरहकी शंकाएं उठती थीं, कितने ही तरहके विचार पैदा होते थे। एक बार एक पुरुष—अपने पतिदेवसे ही धोखा खा चुकी थी, अतः पैर आगे न बढ़ते थे। मैंने रूपचन्द्रसे साफ नाहीं कर दी।

प्लाट जहाँका तहाँ धरा रह गया। एक ऐसी घटना घटी, जिसने सारा प्लाटही बदल दिया। न जाने कैसे इन बातोंका कुछ अंश भौजाईके कानोंमें जा पहुँचा। यह रूपचन्द्रकी ही असावधानताका परिणाम था। उस अधेड़ मिसराइनसे बातें करते समय, जो हम लोगोंको सहायिका बननेको तयार थी, रूपचन्द्रने इस बातपर ध्यान न दिया, कि दीवारोंके भी कान होते हैं। इसीसे मेरी कलंककथाका रहस्य खुल गया।

पुरुष ही यह कहने वाले हैं, कि "स्त्रियाश्चरित्रं—दैवो न जानाति।" पर वास्तवमें उनकी लीलाको समझना ही कठिन है। बात यह हुई कि जब मैंने साफ नाहीं कर दिया, उस समय अपनी कामलिप्साकी पूर्ति न होती देख वह बहुत ही खिजलाया। वह मिसराइनसे यह परामर्श करने लगा, कि अब डरा धमकाकर इसे राजी करना चाहिये। मेरी भावजके कानमें यही बातें जा पड़ीं। यद्यपि इनसे मेरा कलंक प्रकट न होता था; पर इतना भावजको अवश्य मालूम हो गया, कि मुझपर कुछ कुचक्र अवश्य चल रहा है। और शायद मैं भी राजी हो गयी हूँ' हा! विधवापर कौन विश्वास करता है। पुरुष

जातिने नारीजाति—खासकर विधवाओंपर कितना अवि-श्वास किया है, इसका सबसे ज्वलन्त प्रमाण है, विधाओंका वेश-शृंगारहीन अवस्थामें रहना। सच तो यह है कि उनका वश न चला; नहीं तो शायद नाक काट लेनेकी भी अनुमति मिल जाती। परन्तु वेही स्वयं कितने भयंकर हैं-इसका प्रथम प्रमाण यहीं तैयार है—यह बात मुझे बहुत दिनों बाद मालूम हुई। कुछ पहले मालूम होती तो शायद कुछ दूसरा ही रंग खिलता।

खैर, भावजने मातासे कहा। माताने मुझसे। सुनते ही मेरे हृदयकी छिपी हुई प्रतिहिंसाग्नि धधक उठी। मैंने इतना ही कहा—"उस दिन दिन भरके लिये मेरा अशुभ मुँह अच्छा न लगा था। पर अब शायद हमेशाके लिये अच्छा नहीं लगता। अब मैं भार हो पड़ी हूं। नहीं तो क्या उस दिन दिन रात मैं भूखी प्यासी रह जाती और मेरी कोई खबर न लेता। हाँ! पैसेसे माताका हृदय भी बदल जासकता है। यह मैं नहीं जानती थी।"

माँने कहा—"पैसा कैसा?"

मैं बोली—"वही पैसा—जिसके लिये जानबूझकर लड़की कूएमें ढकेली जाती है।"

इतना कह मैं उठकर अपनी कोठरीमें चली गयी। शाम को पिता आये, उन्होंने खासी भत्सर्ना की। मेरे भाग्यको खूब कोसा और वर खोजने व्याहनेमें अपने कष्टोंका वर्णन भी कम

न किया। अन्तमें बोले—"जो होना था, वह तो हो ही गया, अब आगे होशियारीसे रहना।"

मैंने कहा—"ससुरालमें असाधारण आदरका मजा उठा कर कुछ दिन शान्तिसे रहनेके लिये यहाँ आयी थी। पर यहाँ जो आदर सम्मान मिला है और जिस तरह मेरी बदनामी तक करनेकी चेष्टा हो रही है, उससे अब समुद्रमें डूब मरना ही मेरे लिये अच्छा है।"

पिताने कहा—"ललाटका लिखा नहीं मिटता।"

इसी समय किसीने पिताका नाम लेकर पुकारा। मैं चौंक पड़ी। आवाज मेरे देवरकी थी। स्वयं तारानाथ लछमनिया-को साथ लेकर आये थे। आज इतने दिनों बाद एकाएक तारानाथका आगमन और वह भी लछमनियाके साथ मुझे ताज्जुबमें डाल रहा था।

तारानाथने आते ही कहा—"आपके यहाँका विवाह-कार्य समाप्त हो गया। मैंने बुलाया है। आज मैं भाभीको ले जाऊँगा।"

पिताके हाथों तो मानो चाँद आगया। खुशीसे बोले—"आपकी चीज़ है, ले जाइये।" मानो बड़ी भारी जवाबदेहीसे उनकी जान बच गयी। इतना कह उठकर चले गये।

उसी समय तारानाथने मुस्कुराकर मेरी ओर देखते हुए कहा—"नैहरसे तो जी भर गया होगा। अब चलो, तुम्हारे बिना तो मेरी तबीयत ही नहीं लगती।"

मैंने तिर्छी आँखोंसे उनकी ओर देखते हुये कहा—"इसी लिये इतने दिन बाद खबर ली है।"

बोले—"बहुतसी बातें हैं। जल्दी चलो। आज अच्छी तरह तुम्हारी खबर लूँगा।"

तारानाथकी बात सुनकर लछमनिया हँस पड़ी। मैं झट पट तैयार हो गयी। एक बढ़ियासी मोटरगाड़ी दरवाजे पर खड़ी थी। यह गाड़ी मैंने आज तक कभी अपनी ससुरालमें न देखी थी—खासा मोटर सैलून था। मैं मोटर-में जा बैठी। मेरी बगलमें ही तारानाथ बैठ गये। मैंने लछ-मिनियाको भीतर बुलाया, पर वह भीतर न आकर बाहर ड्राइवरके पास जा बैठी।

पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये कि मैं बम्बईकी रहने वाली हूं। बम्बईमें पर्दाप्रथा इतनी अधिक नहीं है, अतएव उस स्त्रीको ड्राइवरके पास बैठनेमें कोई आपत्ति न हुई।

मोटर तेजीसे रवाना हुई। तारानाथने कहा—"भाभी तुम हो बड़ा निठुर, बताओ इतने दिनों तक तुम्हारा जी कैसे लगा?"

मैं सर झुकाये बैठी कुछ सोच रही थी। आज तक किसी पर पुरुषके साथ इस तरह एकान्तमें बैठनेका काम न पड़ा था, अतएव मन उद्विग्न हो रहा था। तारानाथने इतना कह, जबरन मेरा मुँह अपने हाथोंसे अपनी ओर फेर आँखोंसे आँखें मिलाते हुए कहा—"बताओ—"

मैंने सकुचाकर कहा—"क्या बतलाऊँ ?"

तारानाथ कुछ अग्रसर हुए। बोले—"क्या कोई खिलौना मिल गया था ?"

एकाएक कलेजा धकसे हो गया। क्या रूपचन्द्रकी बात इन्हें भी मालूम हो गयी ? साहस कर बोली—"मेरे खिलौना तो आपही हैं।"

"ऐसा ?" कहकर तारानाथने मेरा हाथ, अपने हाथमें ले कसकर दबा दिया झटका देकर बोली—"ओह ! दर्द करता है, यह क्या करते हैं ?" तारानाथने इस बार हाथ खींचकर ध्यानसे मेरे चेहरेकी ओर देखा था। मेरी आँखोंमें थे आँसू ; तुरन्त सुगन्धित रूमाल निकाल, अपने हाथों मेरी आँखें पोंछते हुए बोले---"क्या नाराज़ हो गयीं ?"

मैंने कहा—"नाराज़ होकर क्या कर सकती हूं, पर ज़रा अलग बैठिये।"

तारानाथ बोले—" तुम भौजाई और मैं देवर ; जानती हो आधा हक़ है।" इतना कह उन्होंने जबर्दस्ती आधा हक़ अदा कर लिया। मेरे गालोंपर छाप लग गयी। न जाने क्यों तारानाथकी यह हरकत अच्छी न लगी।

मैंने बिगड़कर कहा—"यह क्या करते हैं ?"

पापिन हूं, इस लिये ये बातें कहनी पड़ती हैं। मुझे अबला समझकर ही आज तारानाथका यह साहस हो गया ! इच्छा हुई, मोटरसे कूद पड़ूं। न जाने क्यों, मन अकुला उठा।

मोटर तेजीसे जा रही थी। मैं अपने ध्यानमें मग्न थी,—तारानाथ अपने। एकाएक ख्याल हो आया यह मोटर कहाँ जा रही है। ध्यानसे देखा तो शहर छूट गया है। यह तो बाबुलनाथकी ओर अग्रसर हो रही है। समझ गयी कुछ दालमें काला है।

थोड़ी देर बाद मोटर एक बहुतही खूबसूरत बँगलेके दरवाजेपर खड़ी हो गयी। समुद्रतटपर बाग़ीचा और उसके भीतर यह बँगला बना हुआ था।

बंगला खूब सजा था। लछमनिया हँसती हुई उतर पड़ी। तारानाथ भी उतरे और तारानाथने ही हाथ पकड़कर जबर्दस्ती मुझे उतारा। मोटरवालेको रुपया देकर बिदा किया।

मैं सकुचाकर एक ओर खड़ी हो गयी, सोचने—लगी क्या करना चाहिये।

लछमनिया पास आकर बोली—"चलो बहू भीतर चलो।"

मैंने कहा—"तुमलोग मुझ कहाँ ले आये हो? मुझे मेरे घर पहुंचा दो।"

लछमनिया हट गयी। तारानाथ हँसते हुए सामने आ खड़े हुए। बोले—"भाभी! तुमने खबर लेनेकी बात कही थी, आज पूरी पूरी खबर लूँगा, अभीसे क्यों घबराती हो? आओ डरनेकी कोई बात नहीं है।"

मैंने हाथ मलते हुए कहा—"मुझे घर पहुंचा दो।"

तारानाथ बोले—"दो घण्टे बाद घर ही चलूँगा। घब-राओ नहीं; इसके बाद जबर्दस्ती मेरा हाथ पकड़कर भीतर ले गये। देखो आरामके सारे सामान मौजूद हैं। सोफा-पर मुझे बैठाकर आप भी बैठ गये। बोले--"भाभी! तुम बड़े दुःखमें हो, मैं जानता हूं। परन्तु भगवान्‌ने यह रूप तुम्हें जीवन भर रोनेके लिये नहीं दिया है। आओ ज़रा बाग़में घूमें, समुद्रतटकी हवा खायें।"

इतना कह उन्होंने हाथ पकड़कर उठाया। मनकी अवस्था कुछ दूसरी ही थी; पर उठ खड़ी हुई। मैंने बहुत ही नम्रतासे कहा—"मेरा जी अच्छा नहीं है, मुझे घर ले चलिये।"

इसके बाद वे बाग़में ले गये। नारीजीवनके कितनेही अंगोंपर कुछ कह गये। प्रलोभनों, शारीरिक सुखों और प्रेममय जीवनके आनन्दोंका ऐसा दृश्य उन्होंने खींचा कि वास्तवमें कुछ देरके लिये मैं अपनी अवस्था भूल गयी। हम दोनों ही बाग़की रविशोंपर घूमते हुए, एक लता-कुञ्जके पास जा पहुंची, इसी समय तारानाथने कहा—"देखो! तुम मेरी प्यारी भाभी हो और मैं तुम्हारा देवर, अब रोनेके दिन गये। क्या मजाल जो कोई तुम्हारी ओर उँगली भी दिखा सके। हाय! इस देवर-भौजाईके रिश्तेके मनोभावोंने भी कितनेको गड्हेमें गिराया है।

एकाएक अपनी अवस्थाका ज्ञान हो आया। सामनेही

समुद्रमें अनन्त लहरें हिलोरें मार रही थीं। और इधर मेरा मन, उसमें भी कम लहरें न उठ रही थीं। एकाएक इच्छा हुई आज खासा मौका है, इस दुःखिया जीवनका अन्त ही क्यों न कर दूँ! परन्तु देर हो चुकी थी। मैं एक ऐसे शिकारीके पंजेमें फँस रही थी जो मेरी प्रत्येक गति विधि पर लक्ष्य कर रहा था। ज्यों ही उस लताकुञ्जके पाससे हटनेकी चेष्टा करने लगी; त्यों हीं तारानाथने मुझे भरपूर आलिंगन कर मारे चुम्बनोंके मेरा मुँह भर दिया।

मैं तड़प उठी। अपना छुटकारा करना चाहा, पर कर न सकी। इधर वासना वेगसे जागरित हो उठी। इसके बाद मेरी एक वह चीज़ चला गयी; जो नारी जीवनका मुकुटमणि है, जो एक बार खो देनेपर इस जीवनमें फिर नहीं प्राप्त की जा सकती! हा! यही नारीजीवनका सतीत्व रत्न है, आज मेरा वही रत्न लुट गया।

थोड़ी देर बाद लछमनिया आ पहुँची, उसके चेहरेपर मन्द मुस्कराहट थी, और मुझपर ग्लानिकी बौछार। तारानाथने उसे देखते हीं कहा—"मालीसे एक मोटर बुलानेके लिये कह दो।"

मोटरगाड़ी आयी। मैं फिर अपनी ससुराल आ पहुँची।

सासने तारानाथकी ओर देखकर कहा—"ले आया?"

तारानाथने कहा—"हाँ।" इतना कहकर वे दूसरी ओर चले गये। सासने कुछ कुशल मंगल, कुछ मेरे परिवारका

हाल पूछा। इसके बाद मैं सीधी अपनी कोठरीमें चली आयी।

रातमें अकेली पड़ी-पड़ी आजकी घटनापर विचार करने लगी, मन स्वयंही मुझे धिक्कारने लगा—मैं समुद्रमें क्यों न कूद पड़ी, पर अब क्या हो सकता था। गया वक्त फिर हाथ नहीं आता। अवसर बीतनेपर पछतानेके सिवा और क्या मिलता है।

छठां परिच्छेद

मिथ्या कलंक।

कौन कह सकता है, किस समय क्या होगा। तारानाथ पर विश्वास करनेका यह नतीजा निकलेगा, लछमनियाँ इस तरह धोखा देगी—यह किसे मालूम था। कुछ भी हो, मैं पापपथकी ओर अग्रसर हो गयी। ससुरालमें आकर मुझपर फिर अत्याचार आरम्भ हुए। सासकी फटकार, देवरानीकी दुतकार और धिक्कार किसी न किसी विषयको लेकर नित्य ही सहनी पड़ती थी। हा! यह भी कोई जीवन है?

तारानाथने कहा अवश्य था, कि अब कोई भी तुम्हें कुछ न कह सकेगा; परन्तु घर आकर उनकी अवस्था भी भींगी बिल्ली जैसी ही हो गई। एक बार उन्होंने मेरा पक्ष लेकर कुछ कहनेका साहस भी किया, परन्तु उसी दिवस सासने उन्हें इतना फटकारा कि सारी शेखी भूल गयी। खूब कलह मची। इसके बाद मुझपर वाक्यवाणोंकी बौछार आरम्भ हो गयी। इसके कुछ ही दिन बाद खबर मिली कि मेरी माताका देहान्त हो गया।

सुनते और सहते-सहते मन ऊब उठा। पहले मैं सास-

की बातोंका जल्दी कोई उत्तर न देती थी, सह लेती थी; परन्तु सहा भी कहाँ तक जाये। अब मैंने भी उत्तर-प्रत्युत्तर करना आरम्भ कर दिया। सोचा—डूब तो चुकी ही हूँ; अब और डूबूँगी। फिर तो कलह इतनी बढ़ी कि अड़ोस-पड़ोसवाले ऊब उठे और मैं घबरा उठी--इस दुःख-भरे जीवनसे। इच्छा होने लगी कि किसी तरह इस घरको ही त्याग दूँ; पर जाऊँ कहाँ। विधवाको कौन आश्रय देता है।

आज दिनभर खूब कलह मच चुकी थी। मैंने आज दिन भरसे कुछ भोजन भी नहीं किया था। शरीरमें एक प्रकारकी ज्वालासी धधक रही थी। रातके बारह बज चुके थे। सभी अपने-अपने रंगमहलमें आराम कर रहे थे। मैं अपनी कोठरीसे बाहर निकल आयी। बाहर छतपर टहलने लगी। एकाएक कानोंमें ऐसी भनक आ पड़ी, मानो मेरा ही नाम लेकर कोई बातें कर रहा है। मैं कान लगाकर सुनने लगी। आवाज़ मेरे मझले देवर हरिनाथके कमरेसे आती हुई मालूम हुई। मैं उसी ओर चल पड़ी। किवाड़ भिड़काये हुए थे। उस कमरेमें मेरी सास, देवर, देवरानी सभी किसी गुप्त परामर्शमें लग रहे थे। मैं जाकर दरवाजेके बाहर खड़ी हो गयी। सासने कहा-"इससे क्या होता है? मैं तो उसे ऐसी सीधी बना दूँगी कि लोग तमाशा देखेंगे।"

हरिनाथ बोले-"नित्यके इस कलहसे बड़ा अपमान हो रहा है। अब बर्दाश्त नहीं होता।"

देवरानी बोलीं—"जबसे ये आयी हैं, तभीसे एक-न-एक नयी आफ़त आयी रहती है। जेठ जी स्वयं तो चले गये, पर यह आपदा हम लोगोंके गले बाँध गये। एक लाख रुपये उनके नामसे जमा कर गये हैं—यह तो देना ही पड़ेगा।"

हरिनाथने झिड़ककर कहा—"कागज़ तो उसने उसी दिन जला डाला, जब भाई साहबने दिया था; पर रुपये उसके नामसे अवश्य जमा हैं। इस समय व्यापारमें घाटा लग रहा है। यदि ये रुपये निकालकर देने पड़े, तो और भी आफ़त होगी और नित्यकी यह कलह कब तक चलेगी। एक न एक दिन वे अलग हो जायँगी, और उसी दिन इन रुपयों-के लिये नालिश-फौज़दारी आरम्भ होगी।"

सासने कहा-"काग़ज़ तो उसने जला दिया न? अब रुपये कैसे मिलेंगे?"

हरिनाथने कहा-"यह तो बिल्कुल आसान बात है, जब चाहे तब उसकी नक़ल लेकर दावा कर सकती है।"

सुनतेही सास गरज उठीं। बोलीं—"मैं एक पैसा उसे न दूँगी।"

हरिनाथने दबी ज़बानमें कहा—"यह तभी हो सकता है, जब उन्हें प्यारसे रक्खो, या वे मर जायें, अथवा व्यभि-चारिणी प्रमाणित होकर घरसे और समाजसे निकाल दी जायें।"

देवरानी बोल उठीं—"ओह! ऐसी औरतोंका क्या ठिकाना, किस समय क्या कर बैठें, किसीसे मिलकर नालिश ही करवा दें। मुझे तो आजकल देवरजीके लक्षण भी अच्छे नहीं दिखाई देते, दोनोंमें खूब हँसी-दिल्लगी हुआ करती है।"

सासने कहा—"क्या तारानाथ उसके पास जाता है?"

देवरानी दबी ज़बानमें बोलीं—"एक दिन बारह बजे रात्रिके समय उन्हें उनकी कोठरीसे निकलते देखा था।"

हरिनाथने धीरेसे कहा—"तारानाथ अभी लड़का है, और ऐसी औरतोंका क्या विश्वास, मुझे तो भय होता है कि ऐसा न हो कि उसका दिमाग घुमा दे, तो भाई-भाईमें ही लड़ाई पैदा हो जाये, मैं गहरी चिन्तामें पड़ गया हूँ।"

वास्तवमें देवरानीने सोलहो आने झूठ बात कही थी। इसमें सन्देह नहीं, कि मैं पाप-पथकी ओर अग्रसर हो चुकी थी; पर तारानाथ बारह बजे रात तक कभी मेरी कोठरीमें नहीं रहे। पुरुषजाति कितनी स्वार्थपर होती है—यह तारानाथकी चालोंसे भी मैं अच्छी तरह अनुभव करती थी। उन्हें तो अपने मतलबसे मतलब था, और मैं एक बार पाप-पङ्कमें फँस चुकी थी, इस लिये अब बचना कठिन हो रहा था।

देवरानीने कहा—"जेठजीने जैसा किया है, उसका फल है, लाख रुपये भी देने पड़ेंगे और भाई-भाईमें बटवारा भी हो जायगा। यह बनी बनाई गृहस्थी उजड़ जायगी।"

सासने कहा—"कुछ भी न होगा, मैंने सब बातें समझ ली हैं, इसका उपाय मैं करूँगी।"

समझ गयो कि कोई नया षड़यंत्र रचा जा रहा है। वास्तवमें तारानाथके सम्बन्धमें कोई बात इन लोगोंको मालूम नहीं है। तारानाथ ही मुझे मायकेसे जाकर लाये थे, इस लिये उनपर देवरानीका समस्त कोप और आवेश था।

पर मैं तो अबला थी, क्या कर सकती थी? लौट आयी अपनी कोठरीमें और खाटपर पड़ रही। सोचने लगी— कहीं मुझे विष न दे दिया जाये। मैं प्राणसे ही न मारी जाऊँ। अभी मैं खाटपर आकर पड़ी ही थी, कि दबे पाँव मेरी सास भी आ पहुँचीं, दूरसे ही देखा, कि मैं सोयी हुई हूँ। लौट गयीं।

दूसरे दिन सवेरेसेही आकाशमें मेघ छा रहे थे। जाड़े-का दिन। आकाशमें मेघ। बहुत ही बुरा दिन था। मैं बहुत देर तक अपनी कोठरीसे बाहर न निकली। एकाएक मेरी सास स्वयं ही वहाँ आ पहुँचीं। बोलीं—"आज अभी तक उठी नहीं।"

मैंने कहा—"आज तबियत अच्छी नहीं है।"

सासने कहा—"एक बात तुझे समझाने आयी हूँ। तारा-नाथसे बात करना छोड़ दे, नहीं तो झाड़ू मारकर तुझे निकाल दूँगी।"

मैंने कहा—"वृथा ही मुझे ऐसी बातें क्यों कहती हो। मैं तो उन्हें अपने पास बैठनेको भी नहीं कहती। कभी कभी वे आते हैं, तो हँस बोलकर चले जाते हैं।"

सासने कहा--"मैंने सब सुना है।"

एकाएक मेरे मुँहसे निकल पड़ा—"लाख रुपये बचानेके लिये किसीने कह दिया होगा। मैं इस घरकी सब चालें समझ गयी हूँ, पर आप लोगोंको यह शोभा नहीं देता।"

तीर निशानेपर जा लगा, सास तिलमिला उठीं, तुरन्त उस कोठरीसे चली गयीं। जाते वक्त कह गयीं---"देखूँगी तू कितनी जबर्दस्त है।"

मैंने अवसर देखकर तारानाथसे एकान्तमें आजकी बातें कह दीं। सुनकर बोले--"तुम कुछ मत करो, मैं समझ लूँगा।"

सास कम खिलाड़िन नहीं थीं। उस दिन तो बात दबी दबायी रह गयी। दूसरे दिन तारानाथने मुझसे आकर कहा "माँको कुछ सन्देह हो गया है, अब क्या करना चाहिये।"

मैंने कहा—"पुरुष होकर मुझसे पूछने आये हो, किस साहसपर उस दिन बागमें मुझे धोखा देकर ले गये थे और क्यों इस तरह मेरा जबर्दस्ती सत्यानाश किया था?"

तारानाथ कुछ अनमना सा होकर बोला--"उस दिन, भाभी! सत्य कहता हूँ, मैं तो तुम्हारे लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ, परन्तु···।

मैं बोली--"परन्तु क्या, इससमय चारों ओरसे मुझपर

अत्याचारोंकी वर्षा हो रही है। न जाने किस समय कौन सी विपत्ति आ जाये-कोई ठिकाना नहीं है।" इतना कहकर उस दिनकी रातवाली सारी घटनायें तारानाथको कह सुनायीं। सुनकर बोला—"कोई चिन्ता नहीं; मैं इसका प्रबन्ध करूँगा, पर तुम भी ज़रा सावधान रहना।" इतना कहकर वह एक ओर चला गया।

दूसरे दिन शामके वक्त मैं अपनी कोठरीके दरवाजेपर बैठी हुई थी कि एकाएक रामू कहार मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। कुछ क्षण तक मेरी ओर देखकर मुस्कराता रहा। इसके बाद चला गया।

मैं मनमें सोचने लगी कि आज इसने ऐसा क्यों किया। रामू उस घरके एक पुराने नौकर शीतलाका लड़का था। इसी घरमें पलकर जवान हुआ था। यद्यपि सास वगैरह इससे पर्दा न करती थीं, परन्तु मेरे सामने आने या मुझसे बोलनेका भी कभी अवसर न आया था और न मैं इन चालोंको पसन्द ही करती थी। इसके दो चार दिन बाद उसने हँसकर मुझसे कुछ कहनेकी चेष्टा भी की। बहुत बुरा मालूम हुआ। मैंने उसी समय लछमनियाको पुकारकर सब हाल कहा, उसने भी चिल्ला-चिल्लाकर उसे खूब फटकारा। सासने सुना। उन्होंने कहा—"कोई चीज़ माँगने गया होगा, इसी घरमें पला हुआ लड़का है। इतना बिगड़ने और हल्ला मचाने की क्या ज़रूरत है?"

पर मुझे रामूकी भावभंगी और चाल-ढाल अच्छी न लगती थी। सासका वह भलेही दुलारा हो और ज़रूरत पड़नेपर उनके पैर भी दबा देता हो, परन्तु मैं इस चालको बिलकुल नापसन्द करती थी। दो-तीन दिन तक तो फिर कुछ न हुआ, पर एक दिन "बहूजी, बहूजी" कहता हुआ वह फिर शामके वक्त मेरी कोठरीमें घुस आया। मैं इस बार गरज उठी। तुरन्त लछमनियाको भेजकर अपने बड़े देवर हरि-नाथसे उसके दुस्साहसकी बात कहलायी। साससे स्वयं जाकर कहा, पर घटनाओंसे मालूम हुआ कि रामू इस घरमें मुझसे विशेष प्यारा है, उससे किसीने कुछ नहीं कहा। परि-णाम यह हुआ, कि अब वह बराबर मेरी कोठरीके सामने से जाते-आते समय मेरी ओर देखकर आँख मुँह बनाता और मुस्कराता था।

तो क्या यह कोई षड़यन्त्र रचा जा रहा है? ध्यानमें आतेही अन्तरात्मा काँप उठी। मैंने मौका पाकर सब समा-चार तारानाथसे कहा। सुनकर बोले--"क्या बात है, पता लगाऊँगा। पर भाभी! मेरी तो इच्छा होती है, कि तुम्हें अपना कण्ठहार बनाकर रक्खूँ। चलो, कहीं चला चलूँ।"

मैंने कहा--"चलो मैं तैयार ही हूँ, मुझे यहाँ कौनसा सुख है।"

तारानाथ बोले--"यह तो ठीक है, पर यह भी समझती

हो, कि इतने बड़े स्टेटसे हाथ धोना पड़ेगा। फिर इसमेंका एक पैसा भी हाथ न लगेगा। खर्च कैसे चलेगा ?"

मैं चौंक पड़ी। ओह ! तारानाथसे कुछ आशा करना वृथा है। बोली-"मुझको हाथ धोना पड़े तो चिन्ता नहीं, पर इतने बड़े स्टेटसे तुम हाथ न धोना, पुरुष हो न। दूसरोंका धर्म और जीवन नष्ट करना जानते हो। जब तुममें इतना स्वार्थ भरा है, तब तुमसे कौनसी आशा की जाये ?"

बहुत देरतक कुछ सोचते हुए अन्तमें तारानाथने कहा--"नाराज़ न हो, स्टेट चला जाये ; पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता। अब इस घरको ही त्याग दूँगा। तैयार रहना, कल मेरे यहाँ कुछ उत्सव है, भीड़-भाड़में खासा मौका मिल जायगा।"

तारानाथ चले गये। मैं बैठी-बैठी अपनी अवस्थापर विचार करती रही। दूसरे दिन वास्तवमें मेरी ससुरालमें कुछ जलसा था। कई स्त्रियाँ तथा पुरुष निमन्त्रित होकर आये थे। उत्सवका कोई कारण मालूम तो न होता था, पर था अवश्य। रातके ग्यारह-बारह बजे तक धूमधाम बनी रही। मैं अपने ही फेरमें थी। अपनी ही कोठरीमें कुछ मंसूबे बाँध रही थी।

एकाएक सास गरजती हुई वहाँ आ पहुँचीं, डपटकर बोलीं—"अभी अभी रामू कहार तेरी कोठरीमें क्यों आया था ?"

मैंने कहा—"कहाँ, यहाँ तो कोई नहीं आया।"

हल्ला मच गया। देवरानीने कहा—"मैंने अपनी आँखों देखा था, कि वह इस कोठरीसे निकलकर चुप चाप नीचे भागा है।"

निमन्त्रित स्त्रियाँ, मेरे दोनों देवर, कुछ पुरुष सब आकर उस स्थानपर एकत्र हो गये। सास ज़ोर-ज़ोरसे रामूके साथ मेरे गुप्त व्यभिचारकी बात कहने लगीं। रामू भी पकड़ कर लाया गया। वह पापीकी तरह मुँह बनाये चुप चाप खड़ा हो गया। न वह 'हाँ' करता है, 'न' नहीं। क्षण भरमें सासने मेरी कलंक कथा औरतों और पुरुषोंके सामने प्रकट कर दी। समाजके सामने मैं दोषी ठहरायी गयी। लोग राम-राम कहने और मुझपर धिक्कारोंकी बौछार करने लगे। इसके बाद वास्तवमें मुझपर झाड़ूकी वर्षा होने लगी। मैं कितना भी रोयी-चिल्लायी, अपनी निरपराधिता और लाख रुपयोंकी बात, कल रात्रिका परामर्श लोगोंको सुनाना चाहा, पर किसीने भी कान नहीं दिया। उस समय समाजके कई मनुष्यों और स्त्रियोंके सामने, घोर वर्षामें, अर्द्ध रात्रिके समय मैं अपनी ससुरालसे झाड़ू मार-मारकर निकाल बाहर की गयी। निकलते समय मैंने एक आशा भरी दृष्टिसे तारानाथकी ओर देखा, पर वे भी मुँह फेर कर हट गये। इसके बाद फाटक बन्द कर लिया गया।

सासका षड़यन्त्र सफल हो गया, बड़े देवरकी चालाकी। उस समय इतने स्त्री-पुरुषोंमें किसीने भी इस बातका रहस्य

समझले, मुझ अबलाका पक्ष लेने और वास्तवमें अपराधिनी हूँ या निरपराधिनी, इस बातपर विचार करनेका साहस न किया। हाय हिन्दू नारीजीवन! हा वैधव्य!

अब कहाँ जाऊँ? क्या मायके चलूँ—नहीं अब यह पापी कलंकिन मुख किसीको न दिखाऊँगी। मायकेमें पहले ही कौनसा आदर हुआ था! अब तो और भी निरादर होगा। अतएव जीवन विसर्जन कर देना ही अच्छा है। अब यह काला मुँह किसीको न दिखाऊँगी। शरीर वेदनासे जर्जर हो रहा था! आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, और ऊपर से प्रबल वेगसे वर्षा हो रही थी। राह नहीं सूझती थी, पर चली समुद्र तटकी ओर। विचारा, आज इस जीवनकी पूर्णाहुति ही कर डालूँगी।

रात्रिका समय, नारीजाति, रूप और यौवन--दोनों शत्रु---साथमें, पर इस समय मुझे कोई भय न था। सीधी समुद्र तटकी ओर पैर बढ़ाती चली जाती थी। जीवनकी लालसा न थी। तारानाथका मुँह फेर लेना, कटेपर नमकका काम कर रहा था। खैर, उसी तरह पानीमें भींगती अभी चौपाटी तक पहुँची ही थी; कि एकाएक उस ओर वर्षामें न जाने कहाँसे रूपचन्द्र आ पहुँचा।

पहले तो रूपचन्द्र मुझको देखते ही चौंक पड़ा। कुछ देर तक गौरसे उसने मेरी ओर आगे पीछे चक्कर काटकर देखा, उसके बाद एकाएक मेरे पास आकर बोला—"प्रियम्वदा!

तुम यहाँ कहाँ ? और तुम्हारी यह अवस्था क्यों ? यह क्या हाल है !"

समुद्रमें डूबना न हुआ। मेरी दुर्दशाका समाचार सुनकर रूपचन्द्रने मुझे बहुत कुछ सान्त्वना दी। समझा बुझाकर, मुझे ले गया।

सातवां परिच्छेद

मेरा निष्कासन ।

लोग कहते हैं नारी नरककी राह बतलाने वाली है। इस तरह न जाने कितनी तरहके वाक्य नारीजातिको—दबा रखनेके लिये गढ़ लिये गये हैं। पराधीन, बहुत दिनोंसे दुर्दशा और आक्रमणग्रस्त हिन्दू जातिकी नारियाँ ये वाक्य सुनते-सुनते अभ्यस्त हो गयी हैं। उन्होंने अपनेको वास्तवमें दोषी और घोर पराधीन समझ लिया है। यह सब क्यों हुआ है—पुरुषोंने सदासे नारीजातिको दबा रखना चाहा है, पुरुषोंकी स्वार्थपरताका यह भी एक ज्वलन्त उदाहरण है। मेरी ही जीवन घटनापर ध्यान दीजिये। मुझे कुपथपर जानेका अवसर क्यों मिला?

सुशिक्षाका अभाव, सामने ही दुराचारियोंका अधिवास, धार्मिक शिक्षाका लेश भी नदारद, असंयमी, अशक्त, घोर दुराचारी, और मृत्युपथगामीसे विवाह—और इन सबसे बढ़कर नैहर और ससुराल दोनोंमें ही विधवा होते ही अत्याचार तथा हृदयवेधी वाक्यवाणोंकी बौछार,—क्यों न हृदय उबल पड़े, क्यों न प्रतिहिंसा वृत्ति जागरित हो पड़े, और किस कारणसे यौवनावस्थामें ही वृद्धाओंसा संयमका अभ्यास

हो जाये। लक्ष्मीने जैसा कहा था, यदि उस तरह मेरा विवाह कर दिया जाता, अथवा पिता-माता या सास आदि ही मुझे प्यारसे रखते तो मैं असली दुःखकी आँच भूली रहती अथवा प्रारम्भसे ही धार्मिक और संयमी शिक्षाका प्रबन्ध होता, तो क्या मेरी यह दुर्गति होती ? पाठक स्मरण रक्खें नारीजाति कामकी पुतली नहीं है,—नारीजाति अपनी मर्यादा और संयम सहजमें नहीं त्यागती, उसे नष्ट करता है विधवा होनेके बाद ही उसका ऊसर जीवन, और घरवालों उसे हीन-दासी समझकर दुर्दशापूर्ण व्यवहार, और वे पुरुष नारीजातिके सबसे बड़े शत्रु हैं, जो नारियोंमें सोलह-गुणा काम बताते हैं ; पर हैं स्वयं कामके पुतले—स्वार्थोंके सरोवर ! और धर्माचार्यों ने तो उन्हें और भी उद्दण्ड कर रखा है, जिन्होंने सारी दण्ड-व्यवस्थाका प्रयोग स्त्री-जाति-पर ही कर दिया है।

तारानाथको ही देखिये, किस तरह उसने धोखेसे बागमें ले जाकर मेरा सत्यानाश किया। वह जानता था, कि रामूकी बात बिलकुल बनावटी है, वह अच्छी तरह समझता था, कि उसकी माताका षड्यन्त्र मेरी बदनामी और दुर्दशा-का कारण हो रहा है। पर क्या उसके हृदयपर कुछ प्रभाव पड़ा ? वे प्रेमभरी बातें कहाँ चली गयीं ? क्या वह नहीं जानता था, कि वह मुझसे यह गुप्त प्रेम जीवन भर नहीं निवाह सकता। पापके पुतले ऐसे ही होते हैं—वे

भविष्य नहीं सोच सकते। और मैं—मैं तो आफतकी मारी उस समय इस तरह उसके चंगुलमें जा फँसी थी, जिस तरह जबर्दस्त बाज़के चंगुलमें मैना।

भाग्यसे या दुर्भाग्यसे रूपचन्द्र मिल गया, नहीं तो मैं अपना जीवन ही नष्ट कर देनेके लिये तैयार थी; पर बदा तो कुछ और ही था, वैसा होता ही क्यों?

बहुत कुछ समझाने-बुझानेके बाद रूपचन्द्रने कहा—"चलो तुम्हें मायके पहुँचा दूं।"

मेरी अब वहाँ जानेकी इच्छा न थी। माताके रहते जब प्यार प्राप्त न कर सकी, तब अब मुझे कौन पूछनेवाला था। पर रूपचन्द्रने कहा—"यदि अपने घर तुम्हें ले जाऊँ तो तुम्हारी बदनामी होती है, फिर इस घोर रात्रिमें तुम्हें कहाँ रखूँ। रख सकता हूँ, किसी वश्यासे आरज़ू-मिन्नत कर उसीके घरमें, पर मैं वैसी जगह तुम्हें नहीं ले जाना चाहता। अतएव अभी मायके ही चली चलो। यदि वहाँ न पटेगी, तो तबतक मैं ऐसा कोई इन्तजाम कर लूँगा, कि तुम स्वतन्त्रता पूर्वक रह सको और किसीका आसरा भी न ढूंढ़ना पड़े।"

सोचा—भाग्यमें दुःख और अपमानके सिवा और कुछ बदा नहीं है। चलो, थोड़ा और भी सही। रूपचन्द्रके साथ ही मायके आ पहुँची। कठिनतासे चिल्ला-चिल्लाकर दरवाज़ा खुलवाया। पिता इस अवस्थामें, एकाएक इस

घोर रात्रिके समय, मुझे देखकर चकित हो पड़े। भाई भी घबड़ा गये, पर भौजाई रूपचन्द्रको साथ देखकर कुछ मुस्कुरा पड़ीं। उन्हें कुछ दूसरा ही सन्देह हो गया। मुझे पहुँचाकर और संक्षेपमें ही मुझसे भेंट होनेकी घटना बताकर रूपचन्द्र उसी समय चला गया।

मैंने ऊपर आकर अपनी दुर्दशाका पूरा समाचार पिता भाई, भौजाई—सबसे रो-रोकर कह सुनाया। झाड़ूके दाग कुसुमसे कोमल शरीरपर खूब उभर रहे थे, वे सभी दिखाये। रामूवाली भी बात कही। सुनकर सब सन्न हो गये, कोई कुछ न बोला। पिता पहले तो मेरी ससुरालवालोंपर कुछ गर्म भी हुए, पर रामूवाली बात जब मैंने कही और आँखोंमें आँसू भर-भरकर अपनी निरपराधिता प्रमाणित करने लगी, तो मानो उन्हें काठ मार गया। उनके मुँहसे फिर कोई आवाज़ न निकली, न सान्त्वना, न फटकार। कुछ देर बाद बहुत ही धीरेसे उठकर उन्होंने एक चाभी निकाली और मेरे हाथमें देते हुए बोले--"यह तुम्हारी कोठरीकी चाभी है, जाओ सो रहो ; सवेरे देखा जायगा।"

मैं चाभी लेकर अपनी कोठरीकी ओर चली ही थी, कि भौजाई बोल उठीं—"जब बात फूट गयी है, चार आदमियों-को मालूम हो गया है, तो समाजवाले क्या मानेंगे? हम लोग भी अब जातिसे बाहर निकाले जायँगे।"

समझ गयी—मेरी सत्यतापर किसीको भी विश्वास

नहीं है। शास्त्रमर्यादा माननेवाले क्या विधवाकी सत्यता-पर भरोसा कर सकते हैं? यदि भरोसाही होता तो क्या उन-पर नाना प्रकारके बन्धनों और आडम्बरोंकी रचना की जाती?

रात भर मैं रोती रही—हाय! कितनी विडम्बना है। दर्दके मारे प्राण आकुल हो रहे थे, पर कोई पूछनेवाला न था। प्याससे कण्ठ सूख रहा था, पर पानी किससे माँगूँ?

किसी तरह सवेरा हुआ। अभी सूर्योदय हुआ ही था, कि मेरी ससुरालसे स्वयं हरिनाथ एक जमादारको लिये आ पहुँचे और पिताको पुकार, मुझे और साथ ही उन्हें भी गालियाँ देते हुए, मेरे गुप्त व्यभिचार और इसी अपराधपर मुझे घरसे निकाल देनेकी बात चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे। पहलेही कह चुकी हूँ, कि जिस मकानमें पिता रहते थे, उस-में और भी कितने ही किरायेदार थे। सबके सामने मेरी मिथ्या पापकथा राष्ट्र हो पड़ी। पिताके सरपर तो मानो सैकड़ों घड़ा पानी पड़ गया। चुप—ज़बानसे एक शब्द भी नहीं! पर अब मैं सहन न कर सकी, झपटकर कोठरीसे बाहर निकल आयी और अपनी निरपराधिता ससुरालवालों-का षड्यंत्र और लाख रुपयेवाली बात ज़ोर-ज़ोरसे कहने लगी। यह भी कह दिया कि नौकर मेरी सासका पैर दबाने वाला है, उनकी बातों और प्रलोभनोंके कारण अन्य घटना स्वीकार नहीं करता।

खूब रोयी-चिल्लायी ; पर नतीजा वही हुआ, जो विधवाओंके सम्बन्धमें होता है। समाजके कर्ता-धर्ता पुरुष, फैसला और दण्ड देनेकी व्यवस्था देनेवाले वेही नरपुंगव, जिनके हृदयमें लेशमात्रभी दया और विश्वास नहीं है, जो यही समझते हैं कि विधवाएँ व्यभिचारिणी न होंगी तो कौन होगा,—अतएव, सबने यही कहा कि, इतने बड़े रईस हरिनाथ क्या झूठ बोलेंगे ? कितने आदमियोंकी रोटी इनकी बदौलत चलती है, क्या एक आदमीको वे नहीं खिला सकते थे, जो इतना बड़ा अपवाद लगाते ? पर वे यह नहीं सोचते, कि विधवा तो भय, संकोच, और अपनी लांछनाके कारण बचती रहती है, पर विधवाओंसे कहीं ज्यादा व्यभिचारी वे स्त्रियाँ होती हैं, जिनके पति अपनी स्त्रीकी सन्तुष्टिकी ओर ध्यान न देकर रातके दो-दो बजे तक केवल रोकड़ मिलाने और हिसाब-किताब देखनेमें मस्त रहते हैं, जो विवाहिताका प्रेम भूलकर, वारवनिताओंके फेरमें फँसे रहते हैं, और जिनके सब पुरुषोंसे एकान्त वार्तालापपर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। साथ ही इस बातकी भी कोई शिक्षा नहीं है, कि धर्म और सतीत्व किस चिड़ियाका नाम है।

मेरी बातें कहाँ तक सत्य हैं—यह तो आगे चलकर बताऊँगी, इस समय मेरी दुर्दशाकी कथा ही सुनिये।

हरिनाथ तो बक-झककर चले गये, पर मेरे घरमें एक आपदासी आ गयी। सभी स्त्रियाँ एकत्र हो कानाफूँसी

करने लगीं। पुरुष मेरी बदचलनीपर आवाज़ कसने और कनखियोंसे मेरी ओर देखने लगे।

थोड़ी देर बाद पिताने मुझे बुलाकर कहा—"प्रियम्वदा! तेरे कारण मेरा माथा नीचा हो गया, पर यह लाख रुपयेकी बात कैसी है?"

इन लाख रुपयोंके सम्बन्धमें पतिदेवके मृत्युकालसे लेकर आज तक जो कुछ हुआ था, कह सुनाया। सुनकर कुछ सोचने लगे। कितनेही दाँव-पेच सोचा गये। बोले—"तू बड़ी अभागी है, जो कागज़ जला दिया। अब उन रुपयोंका प्राप्त करना सहज नहीं है।"

मैंने कहा—"इसीको बचानेके लिये तो मुझपर यह झूठा दोष लगाया गया है।"

पिताके मनमें लोभ पैदा हुआ। मेरी ही बदौलत आज उनके घरमें यह सम्पत्ति दिखायी दे रही थी। यदि ये लाख रुपये और भी आ जाते तो और भी मौज बढ़ जाती। पिताने तर्क-वितर्क द्वारा खूब जाँचा। वहाँ कौन-कौन उपस्थित था? किसने देखा? किसने क्या कहा?—वकील बैरिस्टरों जैसे सवाल किये। बोले—"दोष तो तेरा प्रमाणित हो ही जायगा, परन्तु आज ये रुपये हाथमें रहते तो इनके बलपर समाजके बड़े बड़े मुखियोंका भी मुँह बन्द कर दिया जाता और तुझे कोई कुछ न कहता, अब बड़ा कठिन हो गया है।"

मैं कुछ चिढ़कर बोली—"किसीके कहनेसे ही प्रमाणित हो जायगा ? कुछ बात भी हो। क्या पिता होकर आप मेरी बातपर विश्वास नहीं करते, और यदि रुपयोंसेही सब काम बन सकता है तो आज मेरी बदौलत ही यह घर धन सम्पत्तिसे भरा है; खर्चकर मेरी निरपराधिता प्रमाणित कीजिये : फिर उन लाख रुपयोंसे ले लीजियेगा।"

पिता तो कुछ न बोले, पर बाहर बरामदेसे सुनती हुई मेरी भौजाई तिलमिला उठीं, तिनककर बोलीं—"हाँ, हाँ, सब इनकी बदौलत ही तो हुआ है। सब तरहसे हम लोगोंके मुँहमें कालिख न लगायँगी तो और क्या करेंगी! हम लोगोंने बेटी बेची थी न? इसीसे कहते हैं, भाग फूटे और मुँह जबर, यही दशा न होती तो आज निकाली क्यों जाती।" कह पैर पटकती हुई रसोई घरकी ओर चली गयी।

पर बात मैंने पतेकी और सच्ची कही थी। पितासे इसका तो कोई उत्तर देते बन न पड़ा। बात पलटकर बोले—"तू क्या समझती है, कि मैं चेष्टा न करूँगा?" इतना कह वहाँसे उठ गये।

किसी तरह दिन बीता। इस बीच मिसराइन द्वारा रूप-चन्द्रका एक पत्र मिला। उसने लिखा—"लक्षणोंसे मालूम होता है कि उस घरमें तुम्हारा गुज़र नहीं होगा। मैं प्रति क्षण तुम्हारे हाल-चालकी खबर लेता रहता हूँ, और सब तरहसे तैयार हूँ, घबड़ाना मत।" रूपचन्द्रने ही सब घट-

नाएँ लक्ष्मीके पतिसे जाकर कही थीं। वह हर तरहसे दिखाना चाहता था, कि वह निःस्वार्थ भावसे मेरी भलाई किया चाहता है; पर मैं पुरुषोंसे बहुत डरती थी; बल्कि यों कहना चाहिये कि ज्यों ज्यों समय बीतता जाता था, त्यों त्यों उनके प्रति मेरी प्रतिहिंसावृत्ति बढ़ती जाती थी।

शाम होते ही ज्योंही मेरे पिता शेयर बाज़ारसे लौटे कि त्योंही समाजके कई बुड्ढे पुराने या नेता, पुरोहित सब एक साथ दल बाँधकर आ पहुँचे। पिता तो इनकी शकल देखते ही काँप उठे। भाई खिजला उठे मुझपर। और भौजाईने तिनककर दो चार शब्द कहे और अपने कमरेमें चली गयीं।

पिताने खातिरसे इन लोगोंको बैठाया। मैं समझ गयी, कि हरिनाथकी कृपासे मेरी सारी मिथ्या पापकथा बिरादरी वालोंमें राष्ट्र हो पड़ी है। पिताने पान मँगवाया, मैं भी अपने भाग्यका फैसला सुननेके लिये, उस कमरेके पीछे जाकर खड़ी हो गयी।

पिताने दबी ज़बानमें पूछा—"क्यों, आज ऐसा क्यों?"

एक दूसरे सज्जन बोल उठे—"जब तक यह कन्या आपके घरमें है, तब तक हम लोग आपके यहाँका जल तक स्पर्श नहीं कर सकते।"

सुनकर शरीरमें आग लग गयी। इनकी एक रखेलीकी बात समाज भरमें विख्यात थी और उसे कई सन्तानें भी हो चुकी थीं।

पिताने उन लोगोंको बहुत कुछ समझाया। मेरी निर्दोषिता-के सम्बन्धमें जो कुछ कहा जा सकता था, सब कुछ कहा और व्यभिचारदोष लगाकर मुझे निकालनेका प्रधान कारण, लाख रुपयोंका हजम करना बताया ; पर किसीने भी उनकी बातपर कान न दिया। एक घण्टे तक खासी चखचख मची रही। अन्तमें सबने यही फैसला दिया, कि यदि आज आप उसे अपने घरसे न निकाल देंगे तो कलसे सपरिवार जाति-बहिष्कृत किये जायँगे।

पिताने फिर भी आर्जू मिन्नत की, प्रायश्चित्तकी बात कही। कुछ रुपये भी खर्च करनेका वचन दिया; पर सब निरर्थक, सब अरण्यरोदन हुआ।

अब सहन न हो सका। वे उठकर जानाही चाहते थे, कि मैं सिंहिनीकी तरह तड़पकर दरवाज़ा रोककर खड़ी हो गयी। सोचा, अब तो डूबना ही है—एक बार देखूँ इनमें कितना दम है।

मैंने गरजकर कहा—"अपने कारणसे मैं अपने परिवार वालोंको कष्ट नहीं देना चाहती। पर आप लोग अब मुझे क्या करने कहते हैं? आप लोगोंको कैसे विश्वास हुआ कि मैं अपराधिनी हूँ।"

एक बोल उठा—"हम लोगोंने सब सुन लिया है, अब और कुछ सुनना नहीं चाहते।"

मैंने कहा—"यों नहीं, रामूको बुलाइये, पंचायतके

सामने उससे कबूल करवाइये--देखिये वह स्वीकार करता है !"

एक दूसरे पंच बोल उठे—"कितनी जबर्दस्त औरत है, इससे क्या नहीं हो सकता ?"

मैं बोल उठी—"आप लोगोंके अन्याय विचारके कारण यहां आना पड़ा है। तब आपलोग न्याय करना नहीं आये हैं, बल्कि मेरी ससुरालकी बातें सुनकर फैसला देंगे।"

एकने कहा—"ऐसी स्त्रीसे तो भाषण करना भी पाप है, मुँह देखना कलंक।"

मैंने कहा—"अवश्य ! परन्तु उन पापियोंका तो मुँह देखना और संसर्ग करना तो कलंक नहीं है, जो चार रखे-लियाँ और वेश्याएँ रखते हैं और दोगली सन्तानोंकी वृद्धि कर रहे हैं। वे तथा उनसे संसर्ग रखने वाले क्यों समाजसे नहीं निकाल बाहर किये जाते ? स्वयं दुराचारकर स्त्रियोंको नष्ट करना और निरपराधियोंको दण्ड देना ही क्या पंचोंका काम है ?"

इनमेंसे दो तीन ऐसेही दुराचारी थे। मेरी कड़वी बातोंका कोई उत्तर न था। जो उत्तर मिला, वह उतना ही भोंडा था, जो मूर्खोंके मुँहसे निकलना चाहिये। अर्थात्—"पुरुषोंका सब अधिकार है। पुरुष जाति पवित्र है !"

समझ गयी ; बात ठीक है। तभी तो जरासे अपराधपर स्त्रियाँ दूधकी मक्खीकी तरह निकाल बाहर की जाती हैं, पर

पुरुष—समस्त दुराचारोंकी पगड़ी सरमें बाँधे हुए भी समाजमें निर्द्वन्द्व घूमा करते हैं। यही तो हिन्दू-जातिका न्याय-गौरव है !!

मैंने कहा—आपलोगोंका न्याय-गौरव समझ गयी। पर कृपाकर यह बताइये, कि जब ससुरालसे निकाली गयी, तब क्या वहाँकी सम्पत्तिसे भी कुछ न मिलेगा? पिताको सब संसर्ग त्यागनेका उपदेश दे चले हैं, पर मेरी जीविका कैसे चलेगी?"

सबने एक स्वरसे उत्तर दिया—"इसके ज़िम्मेवार हम-लोग नहीं हैं।"

मैंने बड़ी ही नम्रतासे पूछा—"तो क्या आपलोग मुझे वेश्यावृत्तिकी आज्ञा देते हैं? आखिर मेरा खर्च कैसे चलेगा?"

एक स्वरसे सब बोले—"पापिनी स्त्रियाँ और करती ही क्या हैं?" उत्तर सुनकर मन तृप्त हो उठा। दरवाजा छोड़कर हट गयी। सब उठकर चले गये। सोचा—"देशमें वेश्याओंकी वृद्धिके प्रधान सहायक ये ही हैं।"

जाकर अपनी कोठरीमें पड़ रही। भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये। इसके बाद रात्रिके बारह बजनेके समय जब सभी घोर निद्रामें पड़े थे, उस समय एक पत्र पिताके नाम लिखा। उसे वहीं खाटपर रख, किवाड़ खोल बाहर निकल पड़ी। बाहर

मोटर गाड़ी लिये रूपचन्द्र खड़ा था। उसी समय हमलोग वहाँसे रवाना हो गये। रूपचन्द्रने महालक्ष्मीके पास एक मकानमें मुझे ले जाकर रखा। इस मकानमें और भी कई स्त्रियाँ थीं। रूपचन्द्रने इसमें दो कमरे किरायेमें ले लिये थे। आजसे मेरी जीवनधारा अब दूसरी ही ओर बही।

आठवां परिच्छेद

हाथीके दांत।

आह! पतिसे तो सम्बन्ध ईश्वरने ही तोड़ दिया था, परन्तु अब समाज और अपने कहलानेवालोंसे भी नाता टूट गया। और अपना हुआ रूपचन्द्र! ऐसा ही होता है, अत्याचार जब पराकाष्ठापर पहुँच जाता है, तब समाज-बन्धन टूट जाता है—मस्तिष्क विकृत हो जाता है और हृदयमें प्रतिहिंसा-वृत्ति जागरित हो उठती है। उस समय समाजका भय नहीं रहता, लोक-लाजकी पर्वाह नहीं रहती और हृदय उबल-उबलकर विद्रोह करनेके लिये उतावला हो उठता है! हा! कौन जानता है, कितनी भारतीय नारियाँ अत्याचारों और पुरुषोंकी स्वार्थ-परताका शिकार बन कितने ढगसे वार-वनिताओंकी संख्या बढ़ा रही हैं।

रूपचन्द्रने, महालक्ष्मीके पासवाले मकानमें बड़ी खातिरसे मुझे रखा। पहले ही कह चुकी हूँ, उस मकानमें उसने दो कमरे किराये ले लिये थे। ये दोनों ही कमरे मामूली सजा-वटसे सुसज्जित और जरूरी सामानोंसे भरे पूरे थे। इतने थोड़े समयमें रूपचन्द्रने मेरे लिये कष्ट उठाकर और इतने रुपये खर्च कर जो प्रबन्ध किया था, उससे उसकी दूरदर्शिताकी

तारीफ करनी पड़ती है। वह समझ गया था कि पिताके घरमें मुझे आश्रय न मिलेगा और मैं शीघ्र ही वहाँसे निकाली जाऊँगी।

पिताके घरमें रहनेपर जहाँतक मालूम हुआ था ; रूपचन्द्रकी हैसियत या आमदनी कुछ विशेष रहनेकी खबर न मिली थी ! फिर उसने इतना कैसे कर लिया। उस दिन रातमें महालक्ष्मीके पास वाले मकानमें मुझे पहुँचा कर और एक दासीको मेरी देख-रेखका भार सौंप, रूपचन्द्र उसी समय चला गया। जाते समय कह गया—"अब सवेरे आऊँगा।" इतना कह मेरे उत्तरकी राह देखे बिना ही रूपचन्द्र चला गया।

मैं अपने भाग्य तथा रूपचन्द्रकी कार्रवाईपर सोचती हुई बिछावनपर जा पड़ी। वह दासी मेरे पलँगके नीचे सोयी। नींद क्या खाक आती—न जाने जीवन कैसे बीतेगा, भाग्यमें क्या क्या बदा है—आदि सोचते-सोचते ही सवेरा हो गया।

दूसरे दिन सवेरे ही रूपचन्द्र हँसता हुआ आ पहुँचा। बोला—"रातमें कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?"

मैंने कहा—"नहीं—और तकलीफसे अब क्या डरना है। वह तो मेरी जीवन-संगिनी है।"

रूपचन्द्रने कहा—"ऐसा नहीं। अब दुःखके दिन गये। आजसे अब अपना पुराना जीवन भूल जाओ। घरवालोंका

नाम लेना छोड़ दो और समझ लो कि तुम दूसरी ही हो गयीं। अब सुखसे दिन काटो।"

मैं हँस पड़ा। बोली—"विधवाओंके भाग्यमें सुख और खासकर मुझ जैसीके! खैर, देखा जायगा।"

रूपचन्द्रने कहा—"विधवा जिस समाजके लिये थीं, वह तो छूटा, अब किस बातका रोना है? तुम्हारे आराम और ज़रूरतके सारे सामान यहाँ भरे हैं, दासी तैयार है (और अपने कलेजेपर उँगली रखकर) यह दास तुम्हारी सेवाके लिये मौजूद है। बताओ, और क्या चाहिये?"

मैंने हँसकर कहा—"आपको धन्यवाद!" परन्तु न जाने क्यों, भीतरसे मन ममोस उठा। हाय! तो क्या मैं उस जीवनमें पदार्पण कर रही हूँ, जिसमें इच्छा न रहनेपर भी दिखौआ हँसी हँसनी पड़ती है; हृदयमें प्रेमका लेश भी नहीं है; पर 'प्रियतम' और 'प्राणप्यारे' कहकर सम्बोधन करना पड़ता है?"

अब इन बातोंको सोचना वृथा था। मुझे कुछ सोचमें पड़ा देखकर रूपचन्द्रने कहा—"आओ, इस घरमें रहने-वालोंसे तुम्हारा परिचय करा दूँ, जिसमें जी बहलाता रहे।"

रूपचन्द्र उस कमरेसे मुझे बाहर ले आया। बाहर बीस बाईस वर्षकी एक युवती दरवाजेपर खड़ी थी। मुझे देखते ही निःसंकोच भावसे मेरे पास चली आयी। बोली—"यहाँ

आपको कोई कष्ट न होगा, खूब आरामसे रहेंगी। यह मकान इस समय मेरे ही पास है।"

रूपचन्द्रने भी हाँमें हाँ मिला दी। बोला—"इनका स्वाभाव बड़ा सुन्दर है। इनकी संगतिसे तुम्हें बड़ा आराम मिलेगा। इनका नाम सरस्वती है।"

मैंने उसे धन्यवाद दिया। वह बड़ी हँसमुख थी। हँसती हुई बोली—"हमलोगोंका जीवन तो हँसनेके लिये ही है। अब आनन्द कीजिये। चेहरेपर उदासी क्यों दिखाई देती है? मैं रूपचन्द्रसे सब बात सुन चुकी हूँ। वैसी जगह क्या रहना, जहाँ अपना आदर न हो, और भगवानने आपको रूप दिया है, पापी पुरुष इस रूपके लिये अपना सब कुछ न्योछावर करनेके लिये तैयार रहेंगे।"

इतना कह उसने हँसते हँसते ही मुझे छातीसे लगा लिया। बोली—"आजसे तुम मेरी छोटी बहिन हो, तुम्हें अपने प्राणोंसे बढ़कर रखूँगी।" (रूपचन्द्रकी ओर दिखाकर) इनके द्वारा तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी।"

सरस्वती हँस-हँसकर मुझे अपने दलमें मिलाना चाहती थी; मेरी झिझक छुड़ाना चाहती थी; पर मैं ग्लानिसे दबी जाती थी। रूपचन्द सरस्वतीको मुझे छोड़नेके लिये उसकाता जाता था। थोड़ी देरतक सरस्वतीसे बातें होती रहीं। इसी समय एक दूसरी स्त्री भी वहाँ आ पहुँची। वे सभी देखनेमें अच्छी थीं। रूपवती इसलिये नहीं कहती कि मेरी

समताकी इनमें कोई भी नहीं थी। इस दूसरीका नाम 'चम्पा' था। पीछे रूपचन्द्रसे मालूम हुआ कि ये सभी बम्बईके सेठोंकी रखेलियाँ हैं। सभी हँसने-बोलने और बातें बनानेमें चतुरा थीं।

इन सबसे परिचय करनेके बाद रूपचन्द्र मुझे अपने कमरेमें ले आया। कुछ देरतक चुप रहनेके बाद बोला—"जिनके साथ तुम्हें रहना है, उनका परिचय करा दिया। अब तुमको ये बड़े प्यारसे रखेंगी।"

मैं चुप रही। रूपचन्द्रने कहा—"अब नहा धोकर खाने-पीनेका प्रबन्ध करो। समझ लो कि अब तुम दूसरी हो गयी। मैं अब शामको आऊँगा।"

रूपचन्द्र चला गया। मैं एकान्तमें बैठी-बैठी अपनी अवस्थापर आदिसे अन्ततक विचार कर गयी। रूपचन्द्रपर भी बहुत कुछ विचार किया, पर किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सकी।

ठीक सन्ध्या समय रूपचन्द्र फिर आया। इस समय उसके साथ एक बहुत ही सुन्दर नवयुवक था। दोनों ही मेरे कमरेमें चले आये, पर उस दूसरे युवकको देखते ही मैं झिझककर उठ खड़ी हुई और दूसरे कमरेमें चली गयी। रूपचन्द्र उन्हें उस कमरेमें बैठाकर मेरे पास आया। बोला—"तुम भाग क्यों आयीं?"

मैंने कुछ रुष्ट होकर कहा—"यह किसे अपने साथ ले आये हो ?"

रूपचन्द्र हँसकर बोला—"यह मेरे एक मित्र हैं, जैसे ही रूपवान् वैसे ही धनवान् भी हैं। आज हम दोनों साथही घूमने निकले थे, इधर भी चले आये।"

मैंने कहा—"तो इन्हें यहाँ क्यों ले आये ?"

रूपचन्द्रने कहा—"यों ही! तुम यहाँ क्यों भाग आयी ?"

मैंने कोई उत्तर न दिया, रूपचन्द्रने कहा—"चलो उधर चलो, बम्बईमें इतना पर्दा नहीं किया जाता और ये तो अपने आदमी हैं।"

इतना कह, उसने हाथ पकड़कर मुझे उठाया। इच्छा न रहने पर भी उठना ही पड़ा। उठकर उस कमरेमें आयी। इनका नाम मिट्ठनलाल था। मैंने अनुभव किया, कि मुझे देखते ही मिट्ठनलालकी बाछें खिल गयीं। रूपचन्द्रकी ओर देख कर बोले—"गजब ही खूबसूरती पायी है। ऐसा रत्न तो ढूँढ़े नहीं मिलता। तुम कैसे पा गये ?"

रूपचन्द्रने आँखके इशारेसे रोकते हुए कहा—"बेचारी बिपत्तिकी मारी है। बड़ी कठिनतासे उस विपत्तिसे छुटकारा मिला है।"

मिट्ठनलालने कहा—"कैसी विपत्ति! इनके लिये तो सब कुछ न्योछावर किया जा सकता है।"

इतनेमें ही सरस्वती वहाँ आ पहुँची। बोली—"वाह!

मिट्ठन बाबू आ गये ! अब क्या कहना है, अब तो प्रियम्वदाके भाग जाग उठेंगे।"

मैं सर झुकाए बैठी थी। रूपचन्द्रने कहा—"मैं प्रियम्वदाको दुःखी नहीं देख सकता। न जाने क्यों, इसे कष्टमें देख कर मेरा कलेजा फटता है।"

सरस्वती बोली—"अब कष्ट किस बातका है ?"

मिट्ठन बाबूने भी उसकी 'हाँमें हाँ' मिलायी। इसके बाद अपने गलेसे बड़े-बड़े दानोंवाली मोतियोंकी माला इस शानसे निकालकर मेरी ओर फेंकी, कि वह एकदम मेरे गलेमें आ पड़ी। सरस्वती ठठाकर हँस पड़ी। बोली—"यह उल्टी चाल कैसी ! वरमाल तो उधरसे पड़ना चाहता था।"

मिट्ठन बाबू बोले—"यहाँकी सब चाल ही उलटी रहती है।"

सरस्वती चली गयी। जानेके पहले झुक कर मेरे कानमें कह गयी—"इस सोनेकी चिड़ियाको फँसा रखना, मालामाल हो जाओगी।"

समझ गयी, कि मेरे भाग्यमें क्या बदा है। मनमें बड़ा दुःख हुआ, पर अब कोई दूसरा उपाय न था। हाय ! मैं क्यों न डूब मरी। मैंने वह माला निकालकर जमीनपर रखते हुए कहा—"इसकी क्या ज़रूरत है ?"

मिट्ठनलाल बड़ा चलता-पुर्जा था। छूटते ही बोल उठा—"बीबी ! इसकी बहुत बड़ी ज़रूरत है और यही न हो तो आज कौन किसे पूछे ?"

इतना कह उसने पचास रुपयेके नोट और निकाल कर सामने रख दिये। बोला—"वह दान था और यह दक्षिणा।"

इतना कह मैं 'हाँ—हाँ' करती ही रह गयी, पर उसने रूपचन्द्रका हाथ पकड़कर उठाया। बोला—"चलो।"

दोनों ही उठकर चले गये। इस समय मैं एक कालीन-पर बैठी हुई थी और मेरे सामने ही अन्दाजन चार हजार रुपयोंकी मोतियोंकी माला और वे पचास रुपये पड़े हुए थे। मेरी आँखोंमें आँसू भरे थे, हृदयमें हलचल मचा रही थी, और मन चंचल हो रहा था। कितनी देरतक उसी अवस्था-में बैठी रही, खबर नहीं। एकाएक किसीने दबे पाँव पीछेसे आकर मेरा गाल चूम लिया, मैं चौंक पड़ी। घूमकर देखा तो सरस्वती है। सरस्वती मेरे पास आकर बैठ गयी, मेरी आँखोंमें आँसू देखकर बोली--"यह क्या? इस समय रोनेका क्या काम है?"

मैंने कोई उत्तर न दिया। सरस्वती बोली—"ठीक तुम्हारी जैसी ही एक दिन मेरी अवस्था थी। घरमें दुतकार फटकार और लात-जूतियाँ खायी थीं। पुरुष मुझे हीन समझते थे। स्त्रियाँ मुझे धिक्कारती थीं और अभागिन समझती थीं। आज देखती हो, मैं किस शानसे हूँ? वह मकान मेरा है और मेरा कितनी खातिर होती है, सो भी देख लेना। पुरुषजाति ऐसी है, इनसे बदला लेना ही इस समय हमारा

कर्त्तव्य है। आज इन चीज़ोंको देखकर आँखोंमें दुःखके आँसू भर आते हैं, थोड़े दिन बाद इन चीजोंको न मिलने-पर नकली आँसू लाने होंगे। घवड़ाओ नहीं।"

मैंने कहा—"न जाने क्यों मेरा जो घबराता है।"

सरस्वती बोली—"अब घबराना कैसा। मैं भी तो घब-राती थी, दो दो दिन अन्नजल न ग्रहण किया था! पर लाभ क्या हुआ? न समाजके लोगोंने ग्रहण किया, न घरवालोंने खबर ली। जानती हो, भोग चुकी हूँ विधवाओंको कितनी विडम्बना सहन करनी पड़ती है। मेरा काल तो मेरी सौतेली मा हुई थी और तुम्हारे लिये तुम्हारी सास। आखिर रोकर क्या होगा। अब तो पुरुषोंसे बदला लेना और आनन्द करना ही हमारा धर्म है। भाग्यसे कोई अच्छा मिल गया तो जीवनका बेड़ा पार कर देगा।"

सरस्वती बहुत देरतक समझाती रही। उसने मीठी बातों द्वारा, अपनी बीती कहानी द्वारा, अपने वर्तमान सुख द्वारा, मुझे कितनी ही तरहसे समझाया। समझाती-समझाती बोली—"आज दस वर्षोंसे मैं इस सेठ हरदेवदासके पास हूँ—देखो, किस मौजसे जिन्दगी बीतती है।"

मैंने भी देखा कि बात सच्ची है। इन कई दिनोंमें ही मालूम हो गया कि सरस्वती बहुत प्रसन्न और सुखी है। सर-स्वतीने कहा था—"नाचने ही निकली हो तो घूँघट कैसा!" मैंने भी सोचा कि बात तो सच्ची है।

रात दस बजनेके समय मिट्ठनलालको पहुँचाकर रूपचन्द्र आ पहुँचा। इस समय उसके चेहरेसे प्रसन्नता झलक रही थी। बोला—"अजब ढंगका आदमी है। ऐसा जानता तो मैं कभी उसे यहाँ न ले आता। वह तो मानो तुम्हें देखकर पागल हो गया है। लो, इधर देखो—"इतना कहकर उसने अपनी चादरके भीतरसे एक छोटा सा बक्स निकाला। उसे खोलता हुआ बोला—"यह सब मिट्ठनबाबूने तुम्हें दिये हैं।" मैंने देखा, कि लगभग तीन हजार रुपयेके मेरे शरीरके जेवर हैं। सभी मेरे शरीरके मुताबिक थे।"

देखकर लोभ तो अवश्य ही हुआ; परन्तु उन्हें रूपचन्द्रकी ओर हटाते हुए मैंने कहा—"इनकी मुझे ज़रूरत नहीं है। तुम्हें यह सब लाते शर्म नहीं आयी?"

रूपचन्द्रने कहा—"शर्मकी कौन सी बात है! मैं कुछ उनसे माँगने थोड़े ही गया था। यह तो तुम्हारा रूप है, जो ये चीजें माँग लाया है। मुझसे इन बातोंसे क्या मतलब?"

आग लगे ऐसे रूपमें। मैं खिजला उठी। कुछ चिढ़कर बोली—"इस रूपका अचार बनाकर खा जाओ।"

"बहुत अच्छा" कहकर रूपचन्द्रने जबर्दस्ती मुझे पकड़कर अपनी ओर खींच लिया और जी भरकर मेरे गाल चूमता हुआ बोला—"अचार बहुत ही स्वादिष्ट है।" मैंने धक्का देकर उसे दूर हटा दिया।

रूपचन्द्र बैठ गया। मुझे हाथ पकड़कर बैठाता हुआ

बोला—"नाराज़ न हो तो एक बात कहूँ। तुम्हारे घरवालोंने तो तुम्हारी कोई खबर नहीं ली, पर लछमनियासे मुझसे भेंट हुई थी, तारानाथ तुम्हारे लिये बहुत चिन्तित हो रहे हैं। माँ-बेटेमें कुछ झगड़ा भी हो गया है।"

मैंने कहा—"तारानाथ! पुरुष महान् स्वार्थी होते हैं। उस समय तो उनका किया कुछ भी नहीं हुआ था, जब मुझपर झाड़ूकी वर्षा हो रही थी; अब क्यों चिन्तित होते हैं?"

रूपचन्द्रने कहा—"यह तो मैं नहीं जानता, पर हाँ, वे तुम्हारी खोज कर रहे हैं।"

रूपचन्द्रकी बातें सुनकर सन्देह हुआ कि शायद लछमनियाने बागवाली बात इससे कह दी हो। अतएव मैंने पूछा—"तुमसे लछमनियासे कबकी जान पहचान है?"

रूपचन्द्रने कहा—"उन्हीं दिनोंकी जिन दिनों तुम अपनी ससुरालमें थीं।"

मालूम हो गया कि रूपचन्द्र पहलेसेही मेरी फिराकमें था। मैं बोली—"तो तुम पहलेसेही अपनी टेढ़ी चालें चल रहे थे?"

रूपचन्द्रने कहा—"तुम्हें एक बार देख लेनेपर कौन भूल सकता है?" इतना कह रूपचन्द्रने एक-एककर वे सब जेवर मुझे पहना दिये। उन्हें पहनाकर आइनेके सामने खड़ी करता हुआ बोला—"अब देखो, कैसी राजरानी जैसी मालूम होती हो। अब तुम्हें मैं 'राजरानी' ही कहा करूँगा।"

मैंने कहा—"बहुत ठीक, कुल छूटा, मान मर्यादा टूटी, तो फिर अब उस नामकी ही क्या जरूरत है। अब राजरानी नामसे ही मुझे पुकारा करो।"

उसी दिवससे मैं 'राजरानी' नामसे विख्यात हुई और विधवा नहीं, बल्कि सदासोहागिन समझी जाने लगी। इसी· लिये मैंने अपनी जीवनी आरम्भ करते समय कहा था, कि मैं विधवा थी। वास्तवमें इस समयसे मेरा जीवन ही कुछ दूसरी ओर पलट चला।

फिर तो मैं मान गयी। सोचा, जब मेरा अपना कहलानेवाला कोई नहीं, दुःखका साथी कोई नहीं, तो मैं क्यों "समाज-समाज" कर अपना जीवन नष्ट करूँ। समाज क्या केवल दण्ड देनेके लिये ही है? क्यों न अपने जीवनको सुखी बनानेकी चेष्टा करूँ?"

उसी दिनसे मेरे विचार और भी बदल गये। मैंने रूपचन्द्रसे कहा—"देखो, आज तो तुम मिट्ठनलालको ले आये थे, पर मैं वेश्या बनकर नहीं रहना चाहती।"

रूपचन्द्रने कहा—"मैं कब कहता हूँ कि तुम वेश्या बनो।"

मैं—"तब मिट्ठनलालसे ये सामान क्यों लिये हो? क्या तुममें मेरा खर्च सम्हालनेकी शक्ति नहीं है?"

रूपचन्द्रने मुस्कराकर कहा—"क्या तुम्हें मेरी वास्तविक स्थिति मालूम नहीं है?"

मैंने कहा--"मुझे क्या खबर!"

रूपचन्द्र बोला---"इतनो बातें जाननेकी तुम्हें जरूरत नहीं है। तुम्हारे सुख दुःख और लाभ-हानिका जिम्मेवार अब मैं हूँ। मैं वही करूँगा, जिसमें तुम्हारा भला हो। रही किसीको लाने और न लानेकी बात। सो यह बम्बई है---इसमें ऐसे-ऐसे सेठ साहूकार हैं, जिनकी दृष्टिमें पड़ जाओगी तो सोने चाँदीकी बात कौन कहे---हीरे जवाहरातोंसे लद जाओगी। तुम्हारी इच्छा हो सो करो, मैं तो तुम्हारे भलेकी बात ही सोचा करता हूँ।"

इतना कह, रूपचन्द्र एक ओर चुपचाप इस तरह बैठ गया, मानो मुझसे नाराज हो गया हो। उसको इस तरह उदास देखकर मुझे कुछ कष्ट हुआ। मैं बोली---"इस तरह मुँह फुलाकर क्यों बैठे हो?"

रूपचन्द्रने कहा---"तुम इन बातोंको क्या समझ सकती हो? 'जाके पैर न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई!' मैं तो तुम्हारे लिये लोक-लाज, मान-अपमान सब सहनेके लिये तैयार हूँ; पर तुम्हें मुझपर विश्वास ही नहीं होता। जानती हो, समाज भरमें डंका पिट गया है, कि मैं तुम्हें भगा लाया हूँ। तुम्हारी भौजाईने सबसे यही बात कही है। उस मिस-राइनसे भी पूछा गया था, उसने भी सब बातें कह दी हैं।"

मैंने कहा---"ऐसा! पर तुम तो पुरुष हो, पुरुषोंको तो पापका प्रभाव नहीं होता, वे तो सदा पवित्र हैं।"

रूपचन्द्र बोला—"पर बदनामी भी तो कोई चीज है। खैर, जब उखलमें सर ही दिया है तो धमकसे क्या डरना! मैं सब कुछ सहनेके लिये तैयार हूँ; पर यदि इतनेपर भी तुम्हारा विश्वास पात्र न बन सका, तो सारे किये धरेपर पानी फिर गया। बताओ, उदास न होऊँ तो क्या करूँ?"

पासा पलट गया। सोचने लगी - रूपचन्द्र ठीक ही तो कहता है और इस समय इसकाही सहारा है। यदि यह छोड़कर चला गया, तो बड़ी मुसीबतमें जान पड़ जायगी। अनन्तर मैं उसके पास जा बैठी। बोली—"ऐसी तो कोई बात नहीं, जो तुमपर विश्वास न हो, पर जानते हो, मैं ठहरी कुल-वधू। बताओ, ये अत्याचार कैसे सहन हों।"

रूपचन्द्रने तिरछी दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए कहा—"समझ गया, पर यह तो उसी दिन नष्ट हो गया, जब तुम घरसे निकल आयीं? अब उसकी याद कर नाहक क्यों अपना दिमाग खराब करती हो? कहता हूँ प्रियम्वदा..."

मैंने बीचमें ही रोककर कहा—"प्रियम्वदा नहीं, राजरानी।"

"हाँ हाँ, राजरानी! उस दिन पंचोंने जैसी बातें तुम्हें कही थीं, वे सब मुझे मालूम हुई हैं। मेरा कहना यदि मानो तो उन सबको यहाँ लाकर दिखा दूँ कि उनमें कितनी ढोलमें पोल वर्त्तमान है।"

रूपचन्द्रका निशाना सच्चा लगा। प्रतिहिंसावृत्ति और

भी जागरित हो उठी। उस दिन रूपचन्द्रसे बहुत सी बातें हुईं। रातभर वह वहीं रह गया। बोला—"इस समय बड़ा ऊधम मचा हुआ है, अब दो चार दिन यहीं रहूँगा, घर न जाऊँगा।"

मैं उसी दिवससे कमर कसकर तैयार हुई। एक दिन शामको मिट्ठनबाबू फिर आ पहुँचे। बोले—'तुम्हारे बिना तबीयत नहीं लगती। आज मेरे बागमें बहुत बड़ा जल्सा है, तुम भी चलो, जरा तमाशा देख आना।"

रूपचन्द्रने भी कहा—"कोई हर्ज नहीं है।" हमलोग मिट्ठनबाबूके साथ ही उनके बागमें गये। खासी चहल-पहल थी। कई वेश्याएँ थीं। रातभर गाने-बजानेकी खासी धूम रही। मैं सबके सामने न गयी। एकान्त स्थानमें बैठकर तमाशा देखती रही। उस दिन पुरुषोंका जो भव देखा और उन वेश्याओंके साथ उनकी जो लीलाएँ देखीं, उससे स्पष्ट मालूम हो गया कि आज भारतमें सती-सीता घर-घर मिल सकती हैं, पर लाखोंमें राम एक मिलना कठिन है।

दूसरे दिन सवेरे वे वेश्याएँ तो विदा कर दी गयीं। मैं, रूपचन्द्र तथा मिट्ठनबाबूके साथ वहीं रह गयी। मिट्ठनलालके बहुत आग्रह करनेपर आज सितार लेकर मैं भी गाना सुनाने बैठी। मिट्ठनलाल तो लोट-पोट हो गये। उस दिन शामके समय उनके साथ ही मैं घर लौटी। आज गाना सुनानेके इनाममें उन्होंने अच्छी-सी रक़म मुफ्त दी।

इस तरह ज्यों ज्यों दिन बीतते गये, त्यों त्यों मेरे सुखकी मात्रा बढ़ती ही गयी। रूप-यौवन भी बरसाती नदीकी भाँति बढ़ने लगा। मैं नित्य सन्ध्याको दर्शनके लिये निकलती थी। उस समय भरपूर शृङ्गार किये रहती थी। मैंने देखा कि इसका असर बहुत पड़ता है, कितनोंकी ही गाड़ी मेरे पीछे पीछे आकर मेरा निवासस्थान देख जाती है।

आज रूपचन्द्र सबेरेसे ही किसी कामसे गया हुआ था। मैं अकेली अपने कमरेमें बैठी अपना शृङ्गार कर रही थी। एकाएक कोई धड़धड़ाता हुआ मेरे कमरेमें आ पहुँचा। मैंने चौंककर देखा तो तारानाथ! काठ मार गया। वह तारानाथ हँसता हुआ मेरे पास आकर बोला—'भाभी! यह ठाट-बाट! बताओ, कितनी कठिनतासे तुम्हारा पता लगा है। तुम इस तरह हमलोगोंके सामने ही पाप कमाओगी, यह मुझसे देखा न जायगा।"

सोयी हुई वृत्ति एकाएक जागरित हो उठी। मैं बोली—"आज किस मुँहसे यहाँ आये हो? मुझे बागमें ले जाकर भ्रष्ट करनेवाला कौन है? तुम! और आज मेरी जो अवस्था दिख रही है, उसके बनानेवाले भी तुम लोग ही हो।"

तारानाथने कहा—"मैं मानता हूँ, पर आखिर तुम कुल-वधू हो, तुम्हें क्या ऐसा करना उचित है?"

मैंने कहा—"जिस समय तुम्हारी माताने झाड़ू मार-मार कर मुझे निकाल दिया था, उस समय तुम्हारी आँखोंसे

क्या दिखाई न दिया था? उस समय तुम्हारी क्या यह इच्छा थी, कि मैं समुद्रमें डूब मरूं?"

तारानाथने कहा—"उचित तो वही था भाभी! पर आजकलके जमानेमें वैसा होना कठिन है।"

मैंने बिगड़कर कहा—"लाख रुपये तो बच गये। जाओ, अपनी मातासे कह देना, कि कुल मर्यादाकी अपेक्षा लाख रुपये कहीं बढ़कर हैं। अब मेरी चिन्ता छोड़ो।"

पर तारानाथ छोड़नेवाला न था। उस दिन तो चला गया, पर नित्यही उसका आगमन होने लगा। आता था वह उसी समय, जब रूपचन्द्र नहीं रहता। पर यह बात रूपचन्द्रसे छिपी न रह सकी। अब वह प्रेमीकी भाँति आने लगा था। मुझसे आर्जू-मिन्नत करता, प्रलोभन देता और अपनी पापवासना चरितार्थ करनेकी चेष्टा करता था। कुछ रक़म भी बराबर ही दे जाता था। पर मैं उससे बचना चाहती थी।

धीरे-धीरे बम्बईमें मेरे रूपकी ख्याति बढ़ने लगी। इस समय मिट्ठनलाल मेरा प्रधान प्रेमी था और रूपचन्द्र? वह तो घरके आदमियों जैसा हो हो रहा था। मैं भी उसे अपने आदमियों जैसा ही मानती, मेरी आयसे वह मनमाना खर्च करता। मेरे सुखोंपर हमेशा ख़याल रखता और मेरे रूपकी कीर्त्तिको बढ़ाता जाता था।

मैंने तारानाथके आनेका समाचार उससे भी कह दिया

था। इधर मिट्ठनलालसे भी कहा था। दोनोंकी ही यह राय थी, कि तारानाथका यहाँ आना ठीक नहीं। अतएव, एक दिन चुपचाप हमलोगोंने वह मकान छोड़ दिया और दूसरी ही ओर एक बंगला लेकर रहने लगी। मेरे सारे खर्चेका भार इस समय मिट्ठनलालपर था।

सच कहती हूँ मिट्ठनलालके साथ बड़ी मौजमें जीवन बीतता था। मैं राजरानीके नामसे विख्यात थी। मिट्ठन-लालने एक गवैया नौकर रख दिया था, जो नित्यप्रति आकर मुझे गाने-बजानेकी शिक्षा देता था। इतनेपर भी मैं मिट्ठनलालकी आश्रिता न थी। जब जो मनमें आता, वही करती थी।

वास्तवमें वर्ष भरमें मैं कुछ दूसरी ही हो गयी। इस समय बम्बईमें मेरे गाने-बजाने और रूपकी ख्याति गूँज उठी। पुरुषोंका दल मानो भौंरा बनकर मेरे रूपपर टूट पड़ा। इस समय भी रूपचन्द्र बराबर मेरे यहाँ आता था। नित्य नये प्रेमियोंको फँसाकर लाना मानो उसकी जीविका हो रही थी। इसीकी बदौलत मानो उसकी गृहस्थीका खर्च चलता था। अब वह समाजमें अपनी बदनामीकी बात कभी ज़बानपर भी नहीं लाता था। उसे तो केवल मौजसे मतलब था। मैं ठाटसे खास बँगलेमें रहती, कोई कह भी नहीं सकता था, कि मैं क्या करती हूं।

परन्तु इतना सब होते हुए भी मैं तारानाथसे डर रही

थी। मेरे मनमें रह रहकर सन्देह होता था कि कहीं ऐसा न हो, कि वह मुझपर अत्याचार करनेके लिये तैयार हो जाये। मैं हमेशा उससे सावधान ही रहती थी। एक दिन उस मिसरानीसे भी उस समय भेंट हो गयी, जब मैं लक्ष्मी-नारायणका दर्शन करने गयी थी। उससे मालूम हुआ कि घरवाले अब मेरा नाम भी नहीं लेते। पिताने दूसरा विवाह मेरे निकल आनेके कारण ही नहीं किया है। समाजमें उनकी बहुत बदनामी हो गयी है। पर आजकल आमदनी खूब ज्यादा होती है। और उनका ठाठ-बाट भी खूब ज्यादा बढ़ गया। बाग बगीचेकी सैर बराबर हुआ करती है, और कभी कभी तो वे भी रात-रात भर गायब रहते हैं।

पिताके अधःपतनका यह समाचार जानकर, इस अवस्था-में भी मनमें कुछ दुःख हुआ। परन्तु मैं क्या कर सकती थी। मिसरानीको दस रुपये दिये। उसने बहुत कुछ आशी-र्वाद देते हुए कहा—"मैं भगवान्‌से प्रार्थना करती हूं, कि जहाँ रहो सुखसे रहो।"

उसका आशीर्वाद सुनकर जी जल उठा। खैर, अभी वहाँसे लौटकर अपने मकानपर आयी ही थी, कि एकाएक अपने मित्रको साथ लिये वही पंचराज आ पहुंचे, जिन्होंने उस दिन पितासे कहा था, कि 'जबतक यह कन्या आपके घरमें है, तबतक आपका पान नहीं खा सकता।' नहीं कह सकती, कि उन्होंने पहचाना या न पहचाना, क्योंकि ऐसे

मनुष्योंकी आँखोंपर हमेशा पापका चश्मा चढ़ा रहता है। पर मैं उन्हें देखते ही पहचान गयी। हाँफते हुए आकर फर्शपर बैठ गये। बोले—"उस दिन लक्ष्मीनारायणके मन्दिर-में जबसे आपको देखा, तबसे तरस रहा था।"

मैंने डब्बेसे पान निकालकर, खूब सजाकर उसपर सोनेका वर्क चढ़ा, उनके सामने एक चाँदीकी तश्तरीमें बढ़ाते हुए कहा—"लीजिये, पान खाइये। मैं तो आपलोगोंकी सेवाके लिये तैयार ही हूं।"

इनका नाम प्रभुदयाल था। सरपंच कहलाते थे। कपड़ेके बहुत बड़े व्यवसायी थे। समाजमें इनकी बड़ी धाक थी। थी। लोग इनके न्यायसे थरथर काँपते थे। प्रभुदयालजीने पानकी तश्तरी अपनी ओर खींच अपने साथियोंको भी एक एक दिया और स्वयं भी एक खाकर बोले—"बहुत बढ़िया पान बनाती हो!"

मैंने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—"जैसे देवता वैसे ही पूजा होती है न? आप ठहरे सरपंच! आपको क्या घटिया बीड़ा अर्पण किया जा सकता है। जातसे ही निकाल दी जाऊँ।"

प्रभुदयाल चौंक पड़े। बोले—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ, कि मैं कौन हूं?"

मैं बोली—"इन बातोंको जानकर क्या कीजियेगा। आपलोगोंकी कृपा और दण्ड-विधानसे इस समय मेरी जाति-

वालियोंकी संख्या खूब बढ़ रही है। फिर बताइये, आप कभी छिपे रह सकते हैं ?"

इतना कहकर मैंने दासीको बुलाकर कहा—"जरा मेरा सितार दे जाना।" फिर प्रभुदयालजीको ओर देखकर कहा—"आप आज इधर कैसे भटक पड़े ? आपकी चमेली कहाँ गयी ?"

यह दूसरी पतेकी बात थी। चमेली इनकी रखेलीका नाम था। प्रभुदयाल बोले—"तुम तो मानो मेरे रग-रेशोंसे परिचित हो रही हो। चमेलीकी खबर तुमको कैसे मिली?"

मैं हँस पड़ी। हँसती हँसती ही बोली—"आप घबड़ायें नहीं। अभी तो बहुत सी पतेकी बात बता सकती हूँ। भला आपको जिस तरह लोग बिना जाने नहीं रह सकते। उसी तरह क्या आपकी रखेली भी बिना विख्यात हुए रह सकती है ?"

प्रभुदयाल बोले—"भई, सच यह है, कि जबसे तुम्हें देखा है तबसे सारी दुनिया भूल गया हूँ और फिर वह तो बहुत दिनोंकी पुरानी—बासी फूल हो गयी। बासी फूलका कितने दिन आदर हो सकहैता !"

मैंने कहा—"बहुत ठीक है।" इसके बाद ही मैंने उनकी फरमाइशके अनुसार जी भरकर उन्हें गाना सुनाया। सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। बोले—"बीबी ! क्या तनखाह लेगी ?"

मैंने कहा—"आप मुझे नौकर रखेंगे। कमसे कम हजार रुपया महीना और खर्च।"

प्रभुदयाल तुरन्त राज़ी हो गये। मैंने कहा—"यों नहीं, एक दूसरे आदमीसे भी बातचीत हो रही है, पर आप जैसे रसिक आदमी और सरपंचकी सेवा करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ। अतएव यदि आप राज़ी हों तो लिखा-पढ़ी कर दें। एक पुर्जा लिख दें।"

देखिये जरा व्यसनका रूप! इतने बड़े बुद्धिमान् आदमी-ने बिना सोचे समझे उसी समय एक पुर्जा लिख दिया। मैंने कहा—"तबतक मैं अपना प्रबन्ध कर लेती हूँ। पहली तारीखसे आपकी सेवामें हाज़िर होऊँगी; इतने दिनोंमें आप भी मेरे मकान आदिका प्रबन्ध कर लेंगे।"

प्रभुदयालने कहा—"अवश्य।" इतना कह, उन्होंने उसी समय सौ रुपये मुझे देते हुए कहा—"यह बयाना ले लीजिये?"

मैंने सौ रुपये लेकर रखते हुए कहा—"कल आइयेगा? बताइये, किस समय आयेंगे। अब तो आपको नित्य देखे बिना तबीयत न मानेगी।"

प्रभुदयालने हँसते हुए कल शामको सात बजे आनेका वादा किया। इस समय मेरा मन भीतर ही भीतर खौल रहा था। जिस तरह मेरी सासने झाड़ू मारकर मुझे अपने घरसे निकाल बाहर किया था, ठीक उसी तरह इस प्रभु-

दयालको भी अपने घरसे निकाल देनेकी इच्छा होती थी ; पर अभी समय नहीं आया था।

किसी तरह रात बीती। चमेली कहाँ रहती है, इसका पता मुझे रूपचन्द्रसे सहज ही मिल गया। दूसरे दिन भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त हो मैं दासीको साथ ले चमेलीके यहाँ जा पहुँची। जिस समय खूब ठाट-बाटसे सजधज कर मैं चमेलीके यहाँ पहुँची हूँ, उस समय वह तो मुझे देखते ही अवाक् रह गयी। मैंने उसे अपना परिचय तो न दिया, पर इतना अवश्य कह दिया कि मैं तुम्हारी बुराई नहीं किया चाहती। तुम आज दस वर्षोंसे जिनके पास हो, अब वे प्रभु-दयाल तुम्हें छोड़ना चाहते हैं; पर मेरी ऐसी इच्छा नहीं है। मैं चाहती हूँ, कि जिसका धन उसीके पास रहे। पर तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी। आज सात बजे प्रभुदयाल आने कह गये हैं। तुम किसी तरह छ बजे मेरे यहाँ आ जाओ। बाकी काम मैं कर लूँगी।"

और भी बहुत सी बातें हुईं। सुनकर चमेली बोली—"तुमने अच्छा किया जो मुझे खबर दे दी। अब मैं उन्हें ठीक कर लूँगी। तुमसे क्या कहूँ? इन्हीं देवताकी कृपासे तुम मुझे इस पथपर देख रही हो! इनकी पहलेसेही मुझपर दृष्टि थी। बहुत सी बातें हैं, कहाँतक कहूँ। इतना ही समझ लो मैं इनकी ही दयासे घरसे निकाली गयी हूँ।"

मैंने कहा—"कोई चिन्ता नहीं। मैं ऐसा प्रबन्ध कर

दूँगी, कि ये फिर कभी तुम्हें त्यागनेका नाम भी न लेंगे।"

बात पक्की हो गयी। मैं अपने मकानपर चली आयी। सन्ध्या होनेके पहले ही चमेली आ पहुँची। उसे एक दूसरे कमरेमें मैंने छिपा रखा। आज प्रभुदयाल अपने साथ ही उन्हें भी लेकर आ पहुँचे थे, जो उस दिवस निष्कासनकी आज्ञा देने, मेरे पिताके पास गये थे।

आनेके साथ ही मैंने बड़ी खातिरसे इन सबको बैठाया। स्वयं पान लगाकर देने लगी। किसीने भी कोई आपत्ति न की। इतना ही पूछ लिया, कि हिन्दू हो न? मैंने अपने माथेका सिन्दूर-बिन्दु दिखा दिया। कमरेमें लगी कुछ देवताओंकी तस्वीरें दिखा दीं। प्रभुदयालने कहा—"मैं क्या सहजमें ही यहाँका पान खा लेता। उस दिन लक्ष्मी-नारायणके मन्दिरमें ये दर्शन करने गयी थीं। उसी दिवस समझ गया, कि ये हिन्दू ही नहीं, पूरी वैष्णव बनी हुई हैं।"

मैंने कहा—"परन्तु आपलोग कैसे आदमी हैं। मेरे यहाँका पान तो आपने आनन्दसे खा लिया; पर यदि किसी कुल-वधूपर झूठ ही कोई दोष लगा देता है, तो आपलोग उसके यहाँका पान और पानी तक त्याग देते हैं। जबतक वह उस घरसे निकाल नहीं दी जाती, तबतक वहाँका अन्नजल ग्रहण नहीं करते। यह आपलोगोंकी कैसी चाल और न्याय है?"

प्रभुदयाल ठठाकर हँस पड़े। हँसते हुए ही बोले—"बीबी, समाजकी बात दूसरी ही है। हमलोगोंका कर्तव्य

है, समाजको पवित्र रखना। उसमें कोई दूषण न आने देना। और एक बात जानती हो। हाथीके दाँत खानेके और तथा दिखानेके और होते हैं।"

मैंने कहा—"पर सारा पाप क्या स्त्रियोंमें ही घुसा रहता है? किसी स्त्रीपर थोड़ा भी अपवाद सुनते ही आपलोग उसे निकाल बाहर करते हैं और स्वयं इस तरह गली गलीका झूठन चाटा करते हैं—क्या इससे आपके समाजमें दोष नहीं फैलता?"

दूसरे सज्जन बोल उठे—"पुरुषोंकी असीम शक्ति है, इसीलिये इनपर पाप असर नहीं कर सकता। इनमें तो एक समय दस स्त्रियोंको गर्भ धारण करानेकी क्षमता रहती है। यदि उनको इस तरह पाप असर किया करे तो कैसे काम चले। बताओ तुम दस गर्भ धारण कर सकती हो?"

मैंने कहा—"ठीक है, एक साथ दस गर्भ धारण नहीं कर सकती, पर दस स्थानोंपर इस तरह मुँह काला कर व्यभिचारिणियोंकी संख्या बढ़ानेवालोंको भी कम पापी नहीं समझती। इनके द्वारा समाजका भयङ्कर अपकार होता है।"

प्रभुदयाल मुस्कुराकर बोल उठे—"यदि ऐसा होता तो आपलोगोंको मुट्ठी भर दाना भी न मिलता और भूखों ही मरना पड़ता।"

मैंने कहा—"बहुत ठीक, पर यदि आज पुरुष संयमी होते तो न चमेली बीबो ही घरसे निकाली जाती और न… ।"

इसी समय चमेली उस कमरेमें आ पहुँची। तिनककर बोली—"ठीक कहती हो बहिन! (प्रभुदयालकी ओर दिखाकर) ये सरपंच कहे जाते हैं! ज़रा पूछो तो किन-किन चालोंसे मुझे घरसे निकाला है।"

मैंने कहा—"तुम कैसे आ पहुँची?"

चमेली बोली—"मैं बहुत देरसे आयी हुई हूँ। तुम-लोगोंकी सब बातें सुन चुकी हूं। यह भी मुझे मालूम है, कि अब मुझे त्यागकर ये हज़ार रुपये महीनेपर तुम्हें नौकर रखना चाहते हैं।"

मैंने कहा—"बिल्कुल ठीक है।"

इसके बाद तो उन दोनोंमें इतनी कहा-सुनी और पुरानी बातोंका इस अभद्रतासे वर्णन हुआ, कि सुनकर रोंए खड़े हो गये। मैंने तुरन्त बीच-बचावकर कहा, "बहिन! मैं इनकी नौकरी करनेके लिये तैयार नहीं हूं। यह हजार रुपये महीनेकी चिट्ठी तुम ले जाओ। मुझे इनकी लीला मालूम है। अभी-अभी एक निरपराधिनीको उसकी सासने एक लाख रुपयेके लोभसे झूठा अपराध लगाकर, झाड़ू मार-मार-कर निकाल दिया था; ये सरपंच, उसके घर जाकर उसको निकाल देनेकी आज्ञा दे आये थे। वहाँ पान तक नहीं खाया था; पर अब देखो, उसे घरसे निकलवाकर मेरे हाथका पान किस तरह चाभ रहे हैं। इन अभागोंको अपनी लीलापर शर्म नहीं आती।"

मेरी बात सुनकर प्रभुदयाल सन्न हो गये। बोले—"तब तुम कौन हो? तुम क्या मोतीलालकी कन्या हो?"

मैं बोली—"इससे आपको क्या मतलब कि कौन हूँ, पर इच्छा यही होती है, कि जिस तरह उस निरपराधिनीका न्याय आपलोगोंने किया था और जिस तरह झाड़ू मार-मारकर उसकी सासने उसे निकाला था, उसी तरह इस घरसे आपको भी निकाल बाहर करूँ।"

मेरा सर भन्ना उठा। गरजकर बोली—"आपलोगोंका मुँह देखना पाप है। अभी कल आप कह चुके हैं, कि चमेली बासी फूल है। उसका कौन आदर करेगा। थोड़े दिन बाद मैं भी बासी फूल हो जाऊँगी। जाइये, यहाँसे मुँह काला कीजिये। और चमेली! इनकी बहुत सी लीलाएँ मुझे मालूम हैं—यदि ये तुम्हें त्यागना चाहें, तो मुझे खबर देना। मैं भरी पंचायतमें इन्हें ऐसा सीधा करूँगी, कि छठीका दूध याद आ जायगा।"

इतना कह, मैं दरवाजेकी ओर संकेत करती हुई खड़ी हो गयी। अपने साथियोंके साथ प्रभुदयाल उठ खड़े हुए। जाते जाते बोले—"बीबी! बहुत बढ़-बढ़कर बातें करती हो। यदि बदला न लिया तो मेरा नाम प्रभुदयाल नहीं।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा, पहले कृष्णकुमार और कृष्ण-कुमारीकी तो खबर लीजिये। अब क्षणभर भी विलम्ब न कीजिये। नहीं तो प्रियम्वदाकी सास जैसा ही व्यवहार करूँगी।"

प्रभुदयाल मुझे गालियाँ देते हुए चले गये। मैंने चमेलीसे कहा—"सावधान रहना! यह नाराज़ तो बहुत हो गये हैं। पर आर्जू-मिन्नत करके मना लेना। तुम्हारा इनका दस वर्षोंका साथ है।"

चमेलीने कहा—"तुम तो इनका रत्ती-रत्ती हाल जानती हो। बताओ, कृष्णकुमारवाली इतनी गुप्त बात तुम्हें कैसे मालूम हो गयी?"

मैंने हँसकर कहा—"यद्यपि मेरा भाग्य फूट गया था, पर मैं अपना घर कभी नहीं त्यागती। लाखों कष्ट सहती और वहीं पड़ी रहती। यह इसी प्रभुदयालने छुड़ाया है। न ये मेरे पिताको मुझे निकाल बाहर करनेका आदेश दे आते, न मैं उस रातमें रूपचन्द्रके साथ आती। जो हो, ईश्वर इन मिसरानियोंसे बचाये। इनके द्वारा भी समाजमें बहुत बड़ा व्यभिचार घुस रहा है। मुझे ये सब बातें उसी मिसरानीने बतायी हैं। अबतक तो मैं समझती थी, कि यह झूठ होगा। परन्तु अब तुम्हारी बातोंसे मालूम हुआ कि इसमें असत्य कुछ भी नहीं है।

"बात यह थी, कि स्वयं इनकी पतिव्रता ही इनके घरमें रहनेवाले एक नवयुवक रसोइयेपर अनुरक्त हो रही थी। यह भेद भी फूट गया। पाप छिपा न रह सका। परन्तु एक तो सरपंचकी स्त्री, दूसरे बड़े घरकी लड़की और वधू। बात उसी जगह दबा दी गयी। कोई विधवा और ग़रीब घरकी

लड़की रहती तो उसी समय जाति और घरसे निकाल बाहर कर दी जाती। रसोइयेका लड़का कृष्णकुमार निकाल बाहर किया गया।

"सच तो यह है, कि एक तो व्यापारमें प्रभुदयाल इतने फंसे रहते हैं, कि घरमें क्या हो रहा है, इसे जाननेकी उन्हें फुर्सत ही नहीं मिलती। दूसरे रातभर चमेलीके यहाँ पड़े रहते हैं। बड़ी दया हुई यदि किसी दिन आप घरमें रह गये। पर जिस दिन घरमें रहे, उस दिन चमेलीकी बातको लेकर लड़ाई-झगड़ेकी मात्रा इतनी बढ़ी रहती है, कि वह रात दुःखमयी रजनी हो जाती है। इस अवस्थामें इनकी स्त्रीको ही सब दूषण कैसे दिया जाये? क्या स्त्रियोंमें प्राण नहीं हैं? उनमें लालसा और कामका वेग नहीं है?—उनकी सन्तुष्टि कैसे हो। सच कहती हूँ, चमेली बहिन! पाप कमानेकी ज़रा भी इच्छा नहीं है, पर क्या करूँ, दूसरा पथ भी तो नहीं है।"

इसी समय रूपचन्द्र आ पहुँचा। बोला—"आज प्रभु-दयालका तुमने कुछ अपमान किया है क्या? समुद्र किनारे बैठे सब तुम्हें सत्यानाश कर डालनेके मनसूबे बाँध रहे हैं!"

मैंने कहा—"मेरा सत्यानाश तो कर चुके। अब और क्या करेंगे? मैं तो ग़म खा गयी, नहीं तो आज उन्हें झाड़ू मार-मारकर ही निकाल बाहर करती।"

रूपचन्द्र बोला--"बड़ा शैतान आदमी है। इससे सावधान ही रहना पड़ेगा। ऐसा न हो कि कोई उपद्रव खड़ा कर दे।"

मैंने कहा--"तुम्हें भय मालूम होता हो तो न आया करो। अपनी इज्जत बचाओ; क्योंकि तुम्हें समाजमें रहना है। मेरा ये क्या बिगाड़ लेंगे?"

रूपचन्द्र बोला--"तुम तो आज काटने दौड़ती हो। उनका क्रोध मुझपर उतारना चाहती हो। क्या मामला है?"

मैंने हँसकर कहा--"पुरुष जातिसे हमेशा ही भय बना रहता है। पर तुम न घबड़ाओ, तुम्हारा एहसान मैं जन्म भर न भूलूँगी।"

इतना कह मैं चमेलीकी ओर पलट पड़ी। उसे समझा-बुझाकर बिदा कर दिया।

इसके बाद रूपचन्द्रके पास आ बैठी। इस समय तो वह मेरा आश्रित हो रहा था। उसे मना लेते कितनी देर लगती थी। दो-चार प्यारकी बातें कहते ही वह फिर उसी तरह हँस हँसकर बातें करने लगा।

नवाँ परिच्छेद

मैं लुट गयी।

इस घटनाको घटे कई दिवस बीत गये। एक दिन मैं सन्ध्याके समय घूमनेको जानेकी तैयारी कर रही थी, कि आज फिर तारानाथ आ पहुँचा। उसको देखकर मनमें न जाने कैसे भाव पैदा हो गये। तारानाथने आतेही कहा—"भाभी! आज तुम्हें मेरे बगीचेमें चलना होगा।"

मैंने कहा—"देखो तारानाथ! मेरा तुम्हारा सम्बन्ध और ढङ्गका है। तुम्हारा बार-बार मेरे यहाँ आना अच्छा नहीं। तुम्हारे भलेके लिये ही कहती हूँ, इसमें तुम्हारा अपमान होता है।"

तारानाथने कहा—"भले ही अपमान हो। मैं तो तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। कितनी मुश्किलसे फिर तुम्हारा पता लगाया है। आज तुम्हें चलना ही होगा।"

मैंने कहा—"मैं हरगिज़ न जाऊँगी। उस बग़ीचेमेंही तो मेरा इस तरह सत्यानाश किया है।"

तारानाथ जबर्दस्ती करनेपर तैयार हो गया। बोला—"पकड़कर ले चलूँगा। तुम यह धन्धा छोड़ दो। तुम्हारा सारा खर्च मैं दूँगा। एकान्तमें बँगला खरीद देता हूँ। वहीं

रहा करो। इस तरह बम्बईमें रहकर हमलोगोंके सरपर ही तुम औरोंसे मौज करोगी—यह मुझसे बर्दाश्त न होगा।"

मैंने कुछ बिगड़कर कहा—"मैंने सरपंचसे सबके सामने आज्ञा ले ली थी।"

आज तारानाथका रंग कुछ दूसरा ही दिखाई दिया। इस समय रूपचन्द्र भी नहीं था। दासियाँ किसी कामसे बाहर गयी हुई थीं। बङ्गलेमें काम करनेवाले कुछ माली आदि फाटकके पास बैठे हुए थे। मैं बड़े फेरमें पड़ी। अब क्या करना चाहिये?

तारानाथने कहा—"भाभी! मैं सीधा देवता नहीं हूँ। या तो तुम्हें मेरी मालामें रहना पड़ेगा अथवा तुम या मैं—इन दोनोंमें से कोई न कोई यमपुरी पहुँचेंगे।"

मैंने कहा—"मरनेका तो मुझे भय नहीं है; पर यह बताओ, कि तुम इस तरह मेरे पीछे क्यों पड़ गये हो?"

तारानाथने कहा—"सच तो यह है, कि तुमपर मैं अपना कुछ अधिकार समझता हूँ; तुम्हें अपनी चीज़ समझता हूँ; अतएव मैं तुम्हें त्यागना नहीं चाहता।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा, तो एक काम करो। बम्बई शहरमें तो मैं तुम्हारे पास नहीं रह सकती। चलो, हम तुम कहीं चले चलें"

तारानाथ तैयार हो गया। मैंने कहा—"खर्च कैसे चलेगा?"

तारानाथने कहा—"इसका इन्तजाम मैं कर लूँगा।"

बात पक्की हो गयी। मैंने कहा—"तो अच्छी सी रक़मका प्रबन्ध करके मुझे दे जाना। कमसे कम पचीस हज़ार। जिस दिन इतना लाकर एकत्र कर लोगे, उसी दिन चली चलूँगी।"

किसी तरह तारानाथ चला गया। मुझसे क़सम खिला गया, कि "भाग न जाओगी!" इसके बाद ही मिट्ठन बाबू आये। उनसे मैंने सारा हाल कह दिया। बोले-"मैं पचास हज़ार दूँगा, कहीं जानेका नाम न लेना।"

दूसरे ही दिन उन्होंने पचास हजारका चेक भेज दिया। मैंने चेकपर हस्ताक्षर कर रूपचन्द्रको रुपये लानेके लिये बैंक भेज दिया। पर यह क्या! सारा दिन बीत गया संध्या हो गयी। रूपचन्द्र न लौटा। मैं बहुत चिन्तामें जा पड़ी। आज मिट्ठनलाल भी न आये थे। अतएव, किसीसे यह बात कह भी नहीं सकती थी। रूपचन्द्र उस दिन जो गया, सो फिर न लौटा। दूसरे दिन मिट्ठनलालको यह समाचार कहलाया। उन्होंने बैंकमें जाकर दरियाफ्त किया तो मालूम हुआ, कि रूपचन्द्र रुपये ले गया।

पहले ही कह चुकी हूँ, कि रूपचन्द्रका खर्च आजकल मेरी आमदनीसेही चल रहा था। अतएव, उसकी आय कोई नहीं है—यह मैं पहलेही समझ गयी थी। परन्तु यह आशा कदापि नहीं थी, कि वह इस तरह धोखा देकर ग़ायब हो जायगा। मिट्ठनलालने पुलिसमें रिपोर्ट करनेकी बात कही।

पर मैंने मना कर दिया। समझ गयी, पापकी कमायी यों ही जाती हैं। पुरुष जातिसे फिर धोखा हुआ।

मिट्ठनलाल भी फिर कुछ न बोले। न उन्होंने कुछ रुपये ही भेजे। मैंने भी उनसे फिर कुछ न कहा। रूपचन्द्र-के चले जानेसे मेरा एक बहुत बड़ा सहारा टूट गया। इस समय भी मेरे पास धनकी कुछ कमी न थी। इतने दिनोंमें ही मैंने खासी रक़म पैदा कर ली थी। यदि चाहती तो इस इतनी रक़मसे ही आनन्दसे एकान्त वासकर अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी।

परन्तु याद रखिये, प्रलोभनोंका रूप बड़ा ही मनोमोहक होता है। ज्यों-ज्यों, मैं पापपथपर अग्रसर होती जाती थी, त्यों-त्यों मेरी लालसा भी बढ़ती जाती थी।

एक दिन मैं मिट्ठनलालके साथ थियेटर देखने गयी। थियेटर पहले भी देख आयी थी; पर आज और पहलेमें बड़ा अन्तर था। आज मैं एक बाक्समें आनन्दसे बैठी हुई थी; मेरे पास ही मेरी दासी थी। मिट्ठनलाल पीछेको ओर छिपके कर बैठे हुए थे। उन्होंने देखा कि उनके परिचित कई मनुष्य वहाँ बैठे हुए हैं; अतएव मेरे पाससे हट कर आर्चेष्ट्रा-में जा बैठे। इस समय भी बड़ा दुःख हुआ। हाय! क्या हमलोगोंकी जाति ऐसी है, जिसका संग भी अपमान जनक है! पर हमलोगोंको इस अवस्थामें लाता कौन है?

जिस बाक्समें मैं बैठी हुई थी, उसीकी बग़लमें अधेड़

उसका एक और भी मनुष्य बैठा हुआ था। अवस्था, अनुमान पैंतीस वर्षकी होगी। गोरा रंग, भरा हुआ शरीर, सारे शरीरपर रेशमी वस्त्र शोभा दे रहे थे; पर माथेकी पगड़ी और दुपट्टा रेशमी रहनेपर भी गेरुआ रंगमें रगा हुआ था। इस पुरुषकी दृष्टि मेरी ओर ही थी। तमाशा देखनेमें तो उसका जी न लगता था। रह-रहकर वह मेरी ओर ही देखता था। यही नहीं, तमाशा देखनेवाले भलेमानसोंमें अधिकांशकी दृष्टि मेरेही चेहरेपर थी।

तमाशा अभी आधा ही हुआ था। बीचमें इण्टरवल-की घण्टी बजी थी। मैंने दासीको पान खानेके लिये भेजा, कुछ देर बाद ऐसा मालूम हुआ, मानो वह किसीसे बातें कर रही है। उसकी आवाज़ सुनकर मैंने उठकर देखा—वह पुरुष स्वयं दासीसे बातें कर रहा था। दासी मुझे देखते देखकर तुरन्त पान लानेके लिये चली गयी।

उसने लौटकर पान मेरे हाथमें दे दिया। मैंने कहा—"तू पान लाने गयी थी या लोगोंसे सलाह करने।"

दासीने कहा—"महन्तजीके आदमीने रोक लिया था।"

मैं समझ तो गयी, कि किसने रोका था, पर फिर भी उन्हें सुनानेकी गरजसे बोली—"कौन महन्तजी? और उनके आदमीसे बातें करनेकी तुझे क्या ज़रूरत थी?"

दासीने सकुचाकर कहा—"उसने रोक लिया था।"

इसी समय महन्तजीकी ओरसे आवाज़ आया—"इतना

क्यों बिगड़ती हो? आखिर हमलोग भी भलेमानस ही हैं।"

मैंने मुह फेर लिया। मिट्ठन बाबू आ रहे थे। दासी बोली—"बड़े भारी ज़मींदार हैं, काशीसे यहाँ सैर करने आये हैं। ये 'गिरि' कहलाते हैं। न जाने क्या नाम बताया, मैं भूल गयी।"

मैं कुछ बिगड़कर बोली—"मुझे किसी गिरी पुरीसे क्या मतलब। तू कायदेसे रहाकर, नहीं तो निकाल बाहर करूँगी।"

यह बात मैंने इतने ज़ोरसे कही कि बग़लवाले बाक्समें बैठे हुए महन्तजीके कानोंमें भी जा पड़ी। उधरसे आवाज़ आयी—"इतना सितम न ढाहो।"

इसी समय मिट्ठनलाल वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर मैंने कुछ ज़ोरसे ही कहा—"इतनी शर्म लगती थी, तो मुझे यहाँ लाये क्यों? अकेली बैठते मुझे डर लगता है।"

मिट्ठनलालने कहा—"डर कैसा, मैं तो सामने ही बैठा हूँ।"

मैंने कहा—"लोग अवाज़ा कसते हैं।"

खैर, मिट्ठनलाल पीछेकी ओर हटकर बैठ गये। कुछ देर बैठनेके बाद वे फिर अपना जगहपर जाते हुए बोले—"नींद आती है। जल्दी चलूँगा।"

इधर महन्तजी मेरी ओर इशारा कर अपने आदमीसे

कुछ बातें कर रहे थे। मैं कनखियोंसे उनकी ओर देखती जाती थी।

आजका तमाशा बहुत अच्छा था ; पर मेरी तबीयत न लगती थी। अतएव दासीको मिट्ठनलालको बुलानेके लिये भेजकर मैं उठ खड़ी हुई। बाहर बराम्देमें चली आयी। मेरा उठना था, कि महन्तजी भी उठ खड़े हुए। उसी ओर बराम्देमें आ पहुँचे ; जिधर मैं खड़ी थी।

कुछ देर तक मेरी ओर देखकर बोले—"कहाँ रहती हो ?"

मैंने उनकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया और फिर मुँह फेर लिया। मेरी मुस्कुराहटने ग़ज़बका काम किया। महन्तजी और भी मेरी ओर अग्रसर हुए। बोले—"इस ग़रीबपर भी थोड़ी नेक-नज़र हो जाये।"

उसी समय दासी आ पहुँची। बोली—"मिट्ठनबाबूने कहा है, कि थोड़ी देरमें आता हूँ।"

मैंने दासीसे महन्तजीकी ओर इशारा करते हुए कहा—"आपसे कह दे, कि इस तरह खड़े होकर आवाज़ा कसना भले आदमियोंका काम नहीं है।"

हमलोगोंकी दासियाँ भी कम चतुरा नहीं होतीं। वह तुरन्त महन्तजीके पास चली गयीं। बोली—"आप यह क्या करते हैं ? इन्हें क्या वेश्या समझ रखा है ?" साथही दबी ज़बानसे मकानका पता भी बताती आयी। मैं भी दासी-

को बातें करनेका अवसर देनेके लिये वहाँसे हटकर भीतर अपनी जगहपर चली आयी।

थोड़ी देर बाद ही दासीने लौटकर कहा—"बहुत बड़े आदमी हैं।"

इसी समय मैंने देखा कि दासीके आँचलका कोना कुछ भारी हो रहा है। बड़ीसी गाँठ बँधी है। समझ गयी, मेरा पता बतानेके कारण कुछ इनाम मिल गया है।

मिट्ठनलाल आ पहुंचे। हमलोग तमाशा खतम होनेके पहले ही उठ खड़े हुए। मैंने देखा—"महन्तजी भी उठ खड़े हुए और हमलोगोंके पीछे-पीछे रवाना हुए।"

समझ गयी, यह शिकार भी मार लिया। मिट्ठनबाबू-की गाड़ीपर सवार होकर ही हमलोग घर पहुँचे। पीछे पीछे महन्तजीकी मोटर भी थी।

आज मिट्ठनलाल मेरे यहाँ ही रह गये। महन्तजीकी मोटर गाड़ी आगे निकल गयी।

दूसरे दिन दो पहरके समय ही एक मोटर गाड़ी दरवाजे-पर आ लगी। दरवानने आकर कहा—"काशीके कोई महन्त आपसे मिलने आये हैं।"

मैं तो समझ गयी, कि यह कौन महन्त है; परन्तु कुछ सोचमें पड़ गयी। इसे बुलाऊँ या न बुलाऊँ। मिट्ठनलाल-ने मुझे जिस ऐश-आरामसे रखा था, वह मेरी जितनी खातिर करता था और मेरी नाजबरदारीमें जिस तरह उसका धन

स्वाहा हो रहा था, उसमें मुझे किसी ओर भी नज़र फेरनेकी ज़रूरत न थी ; परन्तु मेरी जातिकी स्त्रियोंका एक खास गुण यह होता है, कि वे कभी एकसे सन्तुष्ट नहीं रहतीं ; उनकी लालसाकी लपट हमेशा ही बढ़ती रहती है ।

मिट्ठनलाल बहुत ही सज्जन था। यद्यपि मेरे कारण उसका धन पानीकी तरह बहा जाता था, पर उसने कभी मेरे काममें बाधा न दी। मुँहसे कभी कुछ न कहा। हाँ अपने धनबलसे वह मुझे अवश्य बाँध रखना चाहता था और इतना प्रेम दिखाता था, कि शायद ही इस जीवनमें किसीको नसीब हो ।

परन्तु मेरे पचास हज़ार रुपये चले गये थे। मिट्ठनलाल-ने उन्हें फिर न भेजा था; अतएव उस रकमको पूरा करना था। मैंने कुछ सोच-विचारकर दरबानसे उन्हें बाहरवाले कमरेमें बैठानेके लिये कहा। पाठकोंको स्मरण होगा, कि इस बंगलेमें मैं अकेली ही रहती थी। अर्थात् मेरा कोई दूसरी संगिनी यहाँ न थी ।

महन्तजी बड़ी शानसे आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद वस्त्र बदल उनके सामने आ पहुँची। महन्तजीको तो टक टकी लग गयी। कुछ देरतक मेरे चेहरेकी ओर देखते रहे। मनकी यह अवस्था देख मुझे हँसी आ गयी। हा ! पुरुषजातिमें संयमका कितना बढ़िया उदा-हरण है

मुझे हँसते देख महन्तजी कुछ संकुचित हो पड़े। मैंने कहा—"कहिये क्या आज्ञा है?"

इतना कह मैं एक कुर्सीपर बैठ गयी। महन्तजीने कहा—"कल रातमें जबसे आपको थियेटरमें देखा था, तबसे आपसे मिलनेके लिये बेचैन हो रहा था।"

मैंने पूछा—"इसका क्या मतलब?"

महन्तजीने कुछ संकुचित स्वरमें ही कहा—"मतलब तो आप स्वयं समझ लें। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं आपकी खातिर करनेमें कुछ भी उठा न रखूँगा।"

मैंने एक कटाक्ष करते हुए कहा—"आपलोग गृहत्यागी महात्मा हैं। यह तो आपकी पगड़ी और दुपट्टेका रंग ही बता रहा है। फिर आपको मेरे यहाँ आनेकी क्या ज़रूरत थी? खासकर एकान्तमें, इस दो पहरके समय, किसी भले घरमें जाकर प्रेम प्रदर्शित करना—यह कहाँका चाल है?"

उनके साथीने उत्तरमें महन्तजीके मनचले हृदय, बड़ी भारी ज़मींदारी, कई लाखकी आय, बम्बईमें तीन-चार दिनोंसे सैर करनेके बहाने आना, आदि कितनी ही बातें कहीं। बोला—"कल रात भर स्वप्नमें आपको ही देखते रहे हैं।"

मैंने कहा—"ठीक है, हो सकता है। अच्छा, प्रणाम!"

इतना कह, मैं कुर्सीसे उठ खड़ी हुई। महन्तजीने मुँह फाड़कर कहा—"वाह! आप चलीं कहाँ, अभी तो आपसे कुछ बातें ही नहीं हुई हैं।"

मैंने मुस्कराते हुए कहा—"यहाँ गृहत्यागी, महात्माओंकी ज़रूरत नहीं है। आपका पता याद कर लिया है। कभी काशी आऊँगी तो अवश्यही आपका दर्शन करूँगी।"

इतना कह, मैं वहाँसे चलनेकी तैयारी करने लगी। महन्तजी मेरी तेज़ी और बातें करनेका ढङ्ग देखकर अवाक् रह गये। मैंने दासीको पुकारा। उसने पान लाकर सामने रख दिया। मैंने अपने हाथसे सबको पान दिया।

पान चबाते हुए महन्तजी बोल उठे—"रानी साहबा! तो क्या मैं यों ही चला जाऊँ?"

मैंने कहा—"नहीं, आपने काशीसे यहाँतक आनेका कष्ट उठाया है। क्या मैं आपको खाली हाथ जाने दूँगी?"

इतना कह, मैंने दासीसे मेरा हाथ-बैग लानेके लिये कहा। दासी ले आयी। मैंने उसमेंसे पाँच गिन्नियाँ निकाल-कर, सामने रखते हुए कहा—"इनसे बाबा विश्वनाथकी पूजा कर दीजियेगा।"

महन्त था तो खिलाड़ी, पर इतने दिनोंमेंही मैं भी अच्छी तरह समझ गयी थी, कि पुरुष जातिसे कैसा व्यवहार करना चाहिये और किस तरह वह क़ाबूमें रह सकती है। इसीलिये, यह चाल थी। मेरी पाँच गिन्नियाँ देखकर ही महन्तजी समझ गये, कि मैं साधारण स्त्री नहीं हूँ। इतना कह मैं दासीको वहीं छोड़, उन्हें प्रणामकर दूसरे कमरेमें चली आयी। पीछे महन्तजी और दासीमें बहुत देरतक बातें होती

रहीं। वे पाँच गिन्नियाँ तो वे छोड़ ही गये। बल्कि अन्दा-जन दो अढ़ाई हजार रुपयेकी हीरेकी एक बढ़िया अँगूठी उस तश्तरीमें रख, लौटाते हुए इतना कहकर चले गये, कि मालकिनसे कह देना कि मैं फिर आऊँगा।"

दासीसे मैंने सख्त ताकीद कर रखी थी, कि वह यह किसीपर भी प्रकट न होने दे, कि मैं कौन हूं। अतएव, वह भी वैसी ही चाल चलती थी, मानो वह किसी कुल-वधूकी दासी है।

संक्षेपमें यह कि महन्तजी उस दिन मुझे ही नहीं बल्कि दासी और दरवानको भी भरपूर रक़म देकर चले गये! मानो उन दोनोंकी भी ज़बान रोक गये।

यह भी एक चाल थी। यदि मैं वेश्याओं वाले मुहल्लेमें जा बसी होती, तो इतनी क़दर न होती। लोग सहज ही मेरे यहाँ जा पहुँचते और मुझे इतनी आमदनी न होती।

मिट्ठनलाल रातके बारह बजनेके बाद शायद ही कभी मेरे यहाँ रहते थे। दो पहरमें अपने काममें लगे रहते थे। अत-एव, महन्तजीको अपना प्रेमी बना लेनेमें मुझे कोई भी अड़-चन नहीं हुई। धीरे-धीरे महन्तजीका मेरे यहाँ आगमन बढ़ने लगा। रक़म भी मुझे खासी मिलने लगी। मेरी शान और, ठाट-बाटकी दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति होने लगी। मैं मन ही मन सोचने लगी, कि मुझसे बढ़कर सुखी इस संसारमें शायद ही कोई दूसरा हो।

इधर मिट्ठनलालका धन खूब खर्च हो रहा था। हमेशा ही सैर-तमाशा, बाग-बगीचेकी धूम रहती थी। एक तो पहलेसे ही गाने-बजानेका मुझे शौक था। दूसरे मिट्ठनलालने जो गवैया रख दिया था, वह बड़ा ही गुनी था। उसकी संगीत शिक्षा पाकर मैं गाने-बजानेमें बहुत ही प्रवीण हो गयी! पाप मनुष्यको पापकी ओर ही खींचता है। पुरुषोंका दिन-रातका संसर्ग रहनेके कारण, मेरे मनकी झिझक छूटती जाती थी। अब अन्य वेश्याओंकी तरह मैं भी पुरुषोंके सामने गानेके लिये जा बैठती। मेरी गान-विद्याकी प्रशंसाकी धूम मच जाती। अन्य वेश्याएँ ईर्षासे जल उठती थीं।

इधर तो मिट्ठनलालका धन स्वाहा हो गया। उधर महन्तजीके आगमनका समाचार भी उनसे छिपा नहीं रह सका। पाप क्या कभी छिपता है? मिट्ठनलाल कुछ अप्रसन्नसे रहने लगे। मुझे भी अब उनकी पर्वाह नहीं थी। बम्बईमें मेरा नाम गूँज रहा था। थी तो अकेली, एकान्त बँगलेमें; पर अब बाग-बगीचोंमें जानेकी वजहसे मेरी ख्याति भरपूर हो रही थी। रातमें भी दस ग्यारह बजे तक मेरे यहाँ बराबर गाना-बजाना होता रहता था। मिट्ठनलाल भी आते थे, पर कम। इस समय मेरे प्रधान प्रेमी महन्तजी हो रहे थे।

आये थे महन्तजी सैर करने; पर मेरे फेरमें पड़कर बहुत दिनोंतक बम्बईमें रह गये। इनके साथ भी बड़ी मौजमें दिन

बीतने लगे। तारानाथकी उस दिनसे कोई खबर नहीं मिली।

मैं थी उसी मुहल्लेमें, जिसमें भले आदमियोंकी बस्ती है। एकाएक एक दिन कार्पोरेशनका एक नोटिस, वह मुहल्ला छोड़ देनेके लिये आ पहुँचा। किसीने मेरी शिकायत लिखी थी। यह भी लिख दिया था, कि यह वेश्या है। मैं दूसरे मकानकी खोजमें थी ही, कि एक दिन तारानाथने आकर कहा—"तुम्हें कुछ लोग पहचान गये हैं। तुमने किसी दिन कुछ भले आदमियोंको अपमानित किया था। अब वे तुमसे बदला लेनेकी चेष्टामें हैं। सावधान रहना!"

इस समय मेरा ज़माना ज़ोरोंपर था, मैं कभी किसीकी पर्वाह नहीं करती थी। मैंने कहा—"मैंने जो कुछ किया है, समझ-बूझकर किया है। मैं किसीकी पर्वाह नहीं करती। तुमने क्या किया, कब चलोगे?"

तारानाथने संकुचित होकर कहा—"उसी प्रबन्धमें हूं। अभी मौक़ा नहीं मिला है।"

मैंने उनके गालपर हलकी सी चपत देते हुए कहा—"तुम्हारा किया कुछ न होगा। तुम ऐसे ही हो।"

तारानाथने कहा—"मैं तुम्हें सावधान करने आया था, अब जाता हूँ।"

तारानाथ चला गया। उसके बाद बहुत दिनोंतक उसकी कोई खबर न मिली।

मिट्ठनलालका आगमन भी घटने लगा।

एक दिन महन्तजीके साथही थियेटर देखने गयी। आज बहुत बढ़िया तमाशा था। महन्तजी बम्बईमें अपरिचित मनुष्य थे। मैं उनके पास ही बैठी हुई तमाशा देख रही थी। उन्हें किसी तरहका संकोच न था। हमलोग आनन्दसे बातें करते और तमाशा देखते जाते थे।

लगभग रातके दो बजे मैं तमाशा देखकर अपने मकानको चली गयी। महन्तजी अपने निवासस्थानकी ओर चले गये। पर यह क्या? मकानके दरवाजेपर ज्योंही मैं दासीके साथ मोटर गाड़ीसे उतरी हूँ, त्योंही मेरा कलेजा धड़क उठा। मकानका फाटक क्यों खुला पड़ा है? सर्वत्र अन्धेरा क्यों छाया है?

खैर, किसी तरह साहस बाँध भीतर घुसी। किरायेकी मोटर गाड़ी मुझे पहुँचाकर रवाना हो गयी। ज्यों त्यों भीतर पहुँची दरवानको पुकारा तो उत्तर नदारद। बहुत आवाजें देनेपर, कुछ गों गों शब्द सा उत्तर सुन पड़ा। कुछ समझ न सकी, कि क्या मामला है। अन्धेरेमें टटोलती हुई चली। पद-पदपर भय मालूम होता था। भीतर जाकर अंधेरेमें ही खोजकर बिजलीकी बत्ती जलायी। इस रोशनीमें जो दृश्य देखा, उससे मेरा हृदय काँप उठा। मेरे मकानके सब सामान इधर उधर बिखरे पड़े थे! दौड़कर लोहेकी आल्मारीके पास जा पहुँची। मैंने देखा, उसका ताला भी

टूटा पड़ा है और उसके भीतरकी समस्त सम्पत्ति—मेरी इतने दिनोंकी पापकी कमाई—सब गायब है, इतना ही नहीं, बहुमूल्य साड़ियाँ, जेवर तथा अन्य सभी कीमती सामान गायब हो गये थे। बच गया था, वही जो मेरे शरीरपर था। अर्थात् जितने जेवर पहनकर थियेटर देखने गयी थी, वे ही बच गये थे।

यह अवस्था देखकर मन बहुत ही चञ्चल और दुःखित हो उठा। पचास हज़ार लेकर रूपचन्द्र गायब हो गया और बची हुई रक़म इस तरह चली गयी। मैंने फिर भी दरवानको पुकारा, पर कोई उत्तर न मिला। इसी समय किसी कमरेसे गों गों जैसी आवाज़ आनेकी बात याद आ गयी। मैं दौड़-कर उसी ओर चली। एक कमरेमें जाकर देखा, कि दर-वानके हाथ पैर बँधे हुए और मुंहमें कपड़ा ठूँसा हुआ है। उसकी छातीके ऊपरमें एक पुर्जा टँका हुआ था, जिसपर लिखा हुआ था—"सरपंच का सार्टिफिकेट।"

दरवानके मुँहसे कपड़ा निकाल उसके हाथ पैर खोल दिये। कुछ देरतक सेवा-सुश्रूषा करनेपर वह होशमें आया। उसके मुँहसे इतना ही मालूम हुआ कि रात बारह बजनेके समय एकाएक कई मनुष्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आनेके साथ ही दरवानको बेकाबू कर उसके हाथ-पाँव बाँध दिये और मुँहमें वस्त्र ठूँस दिया। इसके बाद उन्होंने मेरी सब सामग्री बाँध मोटरपर सवार हो, एक ओरकी राह ली।

जाते समय आलपीनके सहारे यह पुर्जा उसके कोटमें छाती-पर लगा गये।

सरपंचोंका सार्टिफिकेट लिखा देखकर ही समझ गयी, यह किसकी करनी है। तारानाथने शायद इसी घटनाका आभास दिया था। सम्भव है, कि किसी तरह यह बात उसे पहलेही मालूम हो गयी हो।

पर मैं तो लुट गयी। मेरी इतने दिनोंकी सारी कमायी साफ़ हो गयी। सबेरा होते ही दरवान भेजकर मिट्ठनलालको सब समाचार कहलाये। इधर दासीको भेजकर तारानाथको भी खबर दी; परन्तु शाम हो गयी। कोई भी नहीं आया। जान गयी, कि विपत्तिका साथी कोई भी नहीं होता।

रात होनेपर महन्तजी आये। उनसे सारे समाचार कहे। सुनकर बोले—"काशीसे तार आया है, ज़मीन्दारीमें कुछ झमेला मच गया है। कल शामको ही यहाँसे जाना होगा। मेरी इच्छा है कि तुम भी मेरे साथ हो काशी चली चलो। वहाँ बड़े आनन्दसे रहोगी।"

मैंने कहा—"अच्छी बात है। कल आपको पक्का उत्तर दूँगी और बन पड़ा तो कलकत्ता मेलसे ही आपके साथ चली चलूँगी।"

एक आशा तारानाथकी लगी हुई थी। शायद पचीस हज़ार लेकर आ जाये। इसीलिये, आज रातमें ही दरवानको फिर भेजा। तारानाथने मेरा पत्र पढ़ा। पढ़कर बोला—

"प्रत्येक मनुष्यको अपने कर्मका फल भोगना पड़ता है। फुर्सत मिलनेपर आऊँगा।"

मालूम हो गया, कि पच्चीस हज़ारकी रक़मके नामने ही तारानाथका सब प्रेम भुला दिया। रुपयोंके लिये ही तो मैं घरसे निकाली गयी थी और उन्हीं रुपयोंका सवाल फिर पैदा हो गया! अब तारानाथसे कुछ आशा करना वृथा है।

इस समय भी मेरे पास लगभग सात आठ हज़ारके जेवर थे, जिन्हें पहनकर थियेटर देखने गयी थी। चाहती तो इनसे ही किसी तरह अपनी गुज़र कर लेती। परन्तु भाग्यमें तो न जाने क्या-क्या भोगना बदा था। अतएव, दूसरे ही दिन मैं महन्तजीके साथ काशीके लिये रवाना हो गयी।

दसवाँ परिच्छेद

जीवनका काला योग।

घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी सब छूट ही चुके थे। अब बम्बई शहर भी छूटा। मैं महन्तजीके साथ काशीके लिये चल पड़ी। महन्तजीने बड़ी खातिर की—कितने ही तरहके आश्वासन दिये। बोले—"दिल्लीमें कुछ काम है, वहाँसे होता हुआ काशी चलूँगा।"

दिल्ली देखनेकी मेरी बहुत इच्छा थी। मैं राज़ी हो गयी। दूसरे ही दिन हमलोग दिल्ली जा पहुँचे। एक होटलमें बड़े ठाटसे हमलोगोंका डेरा पड़ गया। यहाँ भी घूमने-फिरने और सैर सपाटेमें दिन बीतने लगे। महन्तजी खुले हाथों धन खर्च करते थे। मालूम होता था—इनके पास कारूँका खज़ाना है। बात दो-चार दिनोंके लिये दिल्लीमें ठहरनेकी थी, पर पन्द्रह दिनोंतक हमलोग वहीं रह गये।

महन्तजी तथा उनके नौकर-चाकर सभी मेरी आज्ञा पालनके लिये हमेशा तैयार रहते थे। मानो मैं इस समय उस गृह-राज्यकी स्वामिनी हो रही थी।

एक दिन सवेरेसे महन्तजी कुछ चिन्तितसे मालूम हुए। मैंने कारण पूछा। उत्तरमें उन्होंने कहा—'मेरी इच्छा कुछ

दिनोंतक और भी यहाँ रहनेकी थी, परन्तु लक्षणोंसे मालूम होता है, कि शीघ्रही यहाँसे जाना पड़ेगा। क्योंकि आज फिर तार आ गया है और पासके रुपये भी खर्च हो गये हैं। रुपयोंका इन्तज़ाम करना पड़ेगा।"

मैंने कहा—"फिर ?"

महन्तजी बोले—"नहीं, चिन्ताकी कोई बात नहीं है। आज ही रुपयोंका प्रबन्ध हो जायगा।"

दो तीन दिनोंतक फिर यथा-पूर्व ही सैर सपाटा और आनन्द होता रहा। इसके बाद ही एक घटना ऐसी घटी, जिसने सारे आनन्दपर पानी फेर दिया। उस दिन बात ही बातमें होटलवालेसे झगड़ा हो गया। बात कुछ भी नहीं थी, पर न जाने क्यों, महन्तजी खूब गर्म हो उठे। मार-पीटकी नौबत आ पहुँची थी, पर लोगोंने बीच-बचाव कर दिया।

उस दिन महन्तजीने होटल छोड़ दिया और हमलोग शहरका एक उजाड़ बस्तीमें किरायेके मकानमें चले गये। यह सब चाल थी। महन्तजी अपनी चालसे खाली नहीं थे। उस उजाड़ मुहल्लेमें जानेका कारण मेरी समझमें उस समय आया जब मुझपर विपत्ति आ पहुँची।

यद्यपि मैं पुरुष-जातिसे बहुत सावधान रहती थी, परन्तु क्या करती, कोई दूसरा सहारा न था। अतएव, महन्तजीके कथनानुसार ही चलना पड़ता था। इस मकानमें आनेपर

महन्तजी कभी कभी अपना क्रोध भी मुझपर प्रकट करने लगे थे। मैं पींजरेमें आबद्ध पक्षी जैसी हो रही थी। महन्तजीके व्यवहारोंमें परिवर्तन देखती थी, पर कुछ कर न सकती थी।

एक दिन सन्ध्याके समय महन्तजी कहीं बाहरसे घूम फिर कर आये। आज उनके मिजाजका पारा चढ़ा हुआ था। आते ही पहले नौकर चाकरोंपर कुछ गर्म हुए। सब उनकी प्रकृतिको पहचानते थे। अतएव, कोई कुछ न बोला। इसके बाद जब मैं उन्हें समझानेके लिये उनके पास गयी तो मुझपर बेतरह क्रोधित हो उठे। मैं तो उनका आजका ढङ्ग देखकर अवाक् रह गयी।

इसके बाद वे मेरे पाससे उठकर चले गये। अपने आदमियोंसे सलाह करते रहे। बहुत देरतक मेरे पास लौटकर न आये।

महन्तजीकी आजकी भाव भङ्गी देखकर मनमें बहुत भय और परिताप हुआ। न जाने क्या होनेवाला है। मैं अपनी अवस्थापर विचार करने लगी। रह रहकर इस मकानसे भागनेकी इच्छा होती थी, पर वैसा करनेका साहस भी न होता था। आजतक कभी घरसे बाहर अकेली न निकली थी। क्या करूँ, कुछ समझमें न आता था।

रातके लगभग बारह बजनेके समय महन्तजी मेरे पास आये। इस समय उनकी आँखें लाल हो रही थीं और मुँहसे एक प्रकारकी दुर्गन्ध आ रही थी। आज, अबतक कुछ

खाना-पीना भी न हुआ था। उनके आनेपर मैंने पूछा—"आज क्या भोजन न कीजियेगा।"

महन्तजी कुछ रुष्ट स्वरमें बोले—"तुम्हारे कारण चैन कहाँ है, जो खाना-पीना हो?"

मैंने नम्र स्वरमें कहा—"क्यों, मैंने क्या किया है?"

महन्तजीने कहा—"तुम्हारे कारण ही उस होटलवालेसे झगड़ा हुआ और यहाँ भी मैं देखता हूं, कि तुम छतपर जाकर इससे-उससे आँखें लड़ानेसे बाज नहीं आतीं।"

बात बिल्कुल ही झूठी थी। तुरन्त ही सन्देह हो गया कि मुझपर कोई नयी आपदा आनेवाली है। मैंने दृढ़ स्वरमें कहा—"बात बिल्कुल ही झूठी है। किसीने झूठ ही आपसे कह दिया होगा और होटलकी घटनासे तो मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

होटलवालोंसे और महन्तजीसे बिगाड़ होनेका क्या कारण था, इसका तो आजतक मुझे पता न था; पर मुझपर यह झूठा कलंक आज क्यों लगाया जा रहा है, यह बात कुछ विचारणीय थी।

महन्तजी बिगड़कर बोला—"तब मैं झूठा हूं?"

मैंने कहा—"मैं इसके अलावा और कुछ नहीं कह सकती, कि मैं छतपर कभी जाती ही नहीं।"

परन्तु महन्तजीको मेरी बातपर विश्वास न हुआ। मैं ज्यों-ज्यों उन्हें समझानेकी चेष्टा करती गयी, त्यों-त्यों वे गर्म

ही होते गये। इसके बाद तो बात और भी बढ़ गयी। उन्होंने क्रोधके आवेशमें आकर उसी जगह रखी हुई अपनी बेंत उठा ली और सपासप मेरे शरीरपर मारने लगे। मैं चिल्ला उठी। उसके सहचरोंमेंसे एकने दौड़कर मेरा मुँह बन्द कर दिया। एक हाथसे मेरा मुँह दबाकर उसने चिल्लाने योग्य भी मुझे न रहने दिया। इसके बाद ही मेरे मुँहमें कपड़ा ठूँस दिया गया, हाथ पैर बाँध दिये गये और मैं सब तरहसे बेकाबू कर दी गयी। इधर महन्तजीके अन्य साथी मेरा सन्दूक उठा लाये। उसमेंसे मेरे जेवर और साड़ियाँ उन्होंने निकाल लीं। मेरे शरीरपर जो जेवर थे, वे भी उन्होंने न छोड़े। इसके बाद मुझे उसी कोठरीमें छोड़, बाहरसे सांकल चढ़ा करके सब उस घरको छोड़कर रवाना हो गये।

धनके कारण एक बार सासके हाथोंकी झाड़ूकी मार सहनी पड़ी थी; आज उसी धनके कारण फिर आफत आयी। एक तो मेरी जमा पूँजी बम्बईमें लुट ही चुकी थी। सात आठ हज़ारकी जो रकम रह गयी थी, वह महंतजीके पेटमें गयी। वास्तवमें महंतजीको मुझपर अत्याचार करने-का कोई भी कारण न था। मैं उनके साथ पर्देमें रहनेवाली गृहवधूकी भाँति रहती थी। मेरी तो मानसिक इच्छा ही यह थी, कि इन मनुष्योंकी सेवा न करनी पड़े और एकके साथ ही यह जीवन व्यतीत हो जाये तो बहुत अच्छा हो।

पर पुरुष धन्य हैं। अपने देवरोंकी कथा सुना चुकी हूँ, तारानाथकी बे-वफ़ाई आपलोग देख ही चुके। रूपचन्द्रकी लीला जान गये और अब यह महंत जीका काण्ड देखिये। पुरुष-जाति कितनी स्वार्थपर है! हा हन्त!

हाथ पैर बँधे थे, मुँहमें कपड़ा ठूँसा हुआ था। प्राण अकुला रहे थे। शरीर वेदनासे जर्जर हो रहा था। पर कोई वश न चलता था। बहुत देरतक इसी अवस्थामें पड़ी रही। नारी जीवनपर बड़ी ही घृणा होती थी। इच्छा होती थी, कि अपने प्राण दे दूँ। परन्तु इसका भी कोई उपाय न था।

बहुत देरतक अपने छुटकारेका उपाय सोचती रही। अन्तमें एक उपाय सूझ पड़ा। मैंने अपने हाथकी रस्सीको खाटकी पाटीसे घसना शुरू किया। बहुत देरकी चेष्टासे रस्सी कट गयी। हाथ खुल गये। मुँहसे कपड़ा निकाल पैर भी खोले। दरवाजेके पास जा पहुँची, पर बाहरसे सांकल चढ़ी थी।

जिस कोठरीमें मेरी यह दुर्दशा हुई थी, उसकी एक खिड़की गलीकी ओर पड़ती थी। मैं इस आशासे खिड़कीकी राहसे देखने लगी, कि कोई मनुष्य दिखाई दे जाये तो उससे दरवाजा खोल देनेके लिये कहूँ।

इस समय रात बीत चली थी। अन्दाजन चार बजे होंगे। जमुना स्नान करनेवाले जाते हुए कुछ मनुष्य दिखाई

दिये। उनके मुँहसे राम कृष्णका नाम निकल रहा था। तेज़ीसे यमुना किनारेकी ओर पैर बढ़ाये चले जाते थे। मैंने बड़े ही करुणा भरे स्वरसे उनमेंसे एकको पुकारा। उसने पीछेकी ओर घूमकर देखा। मैंने संक्षेपमें अपनी दशा कह, विनयपूर्वक रक्षाकी प्रार्थना की। परन्तु हाय! "इस झमेले-में कौन पड़े!" कहकर वह चलता बना। इसी तरह कितने ही पढ़े, अनपढ़, सब निकले। मैं घण्टोंतक उस खिड़कीमें बैठी कहती रही, कि "मैं अबला हूँ! मुझे दुराचारियोंने जबर्दस्ती इसमें बन्द कर रखा है। मेरी रक्षा कीजिये।" पर मेरी करुणकथापर किसीने भी कान न दिया।

मनमें ख़याल हुआ—"यही हिन्दू जाति है, जिसमें परो-पकार परम धर्म कहा जाता है। यही वह हिन्दू जाति है, जिसमें एक अबलापर अत्याचार करनेके कारण इतना बड़ा महाभारतका युद्ध और जनक्षय हो गया था। और यही हिन्दू समाज है, जिसमें हम अबलाओंकी रक्षा सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य कहा गया है।" समझ गयी, उस काल और इस कालमें घोर अन्तर पड़ गया है।

बहुतसे मनुष्योंसे कहा। कितने तो मेरा रूप देखकर ही सहम गये, कितने ही किसी आपदामें पड़नेके भयसे भाग गये और कितने ही "नयी बला कौन मोल ले" कहकर चलते बने। अन्तमें एक अधेड़ पुरुषको मुझपर दया आ गयी। वे यमुनास्नान करने तो न जाते थे, पर प्रातःभ्रमण-

को निकले थे। उन्होंने ध्यानसे मेरी बातें सुनीं। सुनकर निर्द्वन्द्व-भावसे भीतर चले आये। आकर साँकल खोल दी। इधर-उधरके बिखरे हुए सामानोंपर दृष्टि पड़नेसे ही वे वास्तविक परिस्थिति समझ गये। मुझसे हाल पूछा—मैंने संक्षेपमें अपना हाल कह सुनाया। झाड़ू मारकर निकाली जाने तककी घटना ही कही। इसके बाद महन्तजीके साथ यहाँ तक आनेका समाचार कहा।

उन्हें विश्वास हुआ या नहीं—मैं नहीं कह सकती। सब सुनकर बोले—"मैं यहाँकी सेवासमितिका मंत्री हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ जो विधवाश्रम है, उसमें तुम्हें रखवा दूँ। बड़े आनन्दसे रहोगी।"

अब तक किस ढँगसे मेरा जीवन व्यतीत हो रहा था, जिस तरह सुखकी घड़ी क्षण भरके लिये भी नहीं दिखाई देती थी, और जिस तरह हर जगह धोखा खाती थी, उससे इस जीवनसे मन ऊब उठा था। अतएव, मैंने विधवाश्रममें जाना ही स्थिर किया।

मेरी कथा सुनते ही वे सन्तुष्ट होकर बोले—"अच्छी बात है, सवेरा होते ही मैं प्रबन्ध कर दूँगा। तब तक तुम किवाड़ बन्दकर यहीं रहो।"

इनका नाम पण्डित उमाशंकर था। देखनेहीमें तेजस्वी पुरुष मालूम होते थे। उन्होंने मेरी ससुराल तथा पिता-

माताका ठिकाना पूछ लिया और वहाँसे चले गये। मैं अपने मान्य-घर झोपड़ी वहीं बैठी रही।

दुर्दान्त महन्त तथा उसके साथी मेरी सब सामग्री उठा कर ले गये थे। घरमें एक थाली भी न छोड़ गये थे, जिससे अपना काम चलाती।

सवेरा होते ही विधवाश्रमके मंत्री, पण्डित दुर्गाशंकर तथा अन्य कई सज्जन आ पहुँचे। मुझसे कितने ही तरह-के सवाल किये जाने लगे। मैंने उत्तरमें वेही बातें कहीं जो पण्डित दुर्गाशङ्करसे कही थीं। अन्तमें, वे मुझे अपने साथ लेकर विधवाश्रमकी ओर रवाना हुए।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मैं विधवाश्रममें।

नारी स्नेहकी मूर्त्ति है। उसी स्नेहमें जब बाधा पड़ती है, तो नारीजातिका मन चञ्चल हो उठता है। दूसरोंकी बात तो मैं नहीं कह सकती हूँ—पर अब तककी अपनी जीवन-घटनाओंपर जब-जब मैंने ध्यान दिया, तब-तब यही मालूम हुआ, कि मुझे प्रेम कहीं प्राप्त न हुआ। सारा जीवन मानो नीरसताके खारे पानीमें ही डूबा रहा। अपने पतिसे न सही, यदि उस परिवारवाले भी मुझे प्रेमसे अपनाकर रखते तो आज मेरी यह अवस्था न होती।

दिल्लीका विधवाश्रम बड़ा ही भव्य बना हुआ था। चारों ओर मकान, बीचमें सुन्दर बगीचा! बड़ी ही रुचिर जगह थी। जाते ही उस स्थानको देखकर मन प्रसन्न हो उठा। दरवाज़ेपर ही आफिसवाला कमरा था। भस्म त्रिपुण्डधारी एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य बैठा हुआ था। यही इस विधवाश्रमकी देख रेख करनेवाला था। यह बहुत देर तक सिरसे पैर तक मुझे अच्छी तरह देखता रहा। इसके बाद मंत्री महोदय, जो मुझे अपने साथ वहाँ तक लाये थे, उनसे एकान्तमें कुछ बातें करनेके लिये उठकर चला गया। थोड़ी देर बाद

लौटकर उसने मेरा नाम पता सब अपने रजिस्टरमें दर्ज किया। इसके बाद मुझे साथ लेकर ऊपर चला। दुमंजलेमें मेरे लिये एक कमरेका प्रबन्ध कर दिया गया। उसमें मेरे आरामकी सब कुछ सामग्री मौजूद था। हाँ, शौकीनीके सामान न थे। उन्होंने दो चार कुर्सी गमले आदि तुरन्त भेज दिये।

प्रबन्ध उत्तम था। यहाँका प्रबन्ध देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। सोचा "यहाँ आरामसे दिन बीतेंगे।"

भोजन इत्यादि करनेके बाद ही प्रबन्धक महाशय मेरे कमरेमें आ पहुँचे। बोले—"आप कितना क्या पढ़ी हैं?"

मैंने उन्हें अपनी विद्याकी परीक्षा दी। परीक्षा लेकर वे बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"यद्यपि यहाँ आनेवाली स्त्रियोंको कुछ न कुछ परिश्रमका काम करना ही पड़ता है, परन्तु आपसे वह काम न लिया जायगा। आपके जिम्मे यहाँ रहनेवाली स्त्रियोंको पढ़ानेका भार रहेगा।"

मैंने सकोचसे धन्यवाद देते हुए कहा—"मैं सभी सेवायें करनेके लिये तैयार हूँ।"

प्रबन्धक महाशयने इस वाक्यका क्या अर्थ लगाया, नहीं कह सकती। उत्तरमें कुछ मुस्कुराकर बोले—"यह मैं मंत्री महोदयसे कह दूँगा।"

सन्ध्या समय स्वयं मंत्री तथा सभापति महोदय आ पहुँचे। दोनों ही बढ़िया विलायती रेशमी वस्त्र पहने, बड़े ठाट-बाटसे थे। आते ही उन्होंने प्रबन्धक महोदयसे कुछ

देरतक बातें कीं। इसके बाद ऊपर प्रत्येक कमरेमें जाकर विधवाओंसे उनके कष्टके सम्बन्धमें पूछने लगे। अन्य विधवाओं तथा आश्रमवासिनियोंसे कुशल-समाचार पूछनेके बाद वे मेरे कमरेमें भी आ पहुँचे। आते ही बोले– प्रबन्धक महोदयसे सुना है, कि आप पढ़ी-लिखी हैं। फिर आप इस आपदामें कैसे आ फँसीं?"

उत्तरमें मैंने संक्षेपमें समाजवालोंका सारा अत्याचार, एक लाख रुपयोंकी बात, झाड़ू मारकर निकाली जाना; भाग्यकी खोजमें भटकते-भटकते महंतजीके पाले पड़नेकी बात आदि सब कुछ कह सुनाया।"

सुनकर दोनों ही मेरे सौन्दर्य और विद्याकी तारीफ और मेरी दुर्दशापर अफसोस जाहिर करते हुए बोले—"अब आपके दिन आरामसे बीतेंगे। यहाँ, आश्रममें जो स्त्रियाँ हैं उन्हें आप पढ़ावें; बस, आप जैसी सुकुमार स्त्रीके जिम्मे और कोई काम न दिया जायगा।"

इस स्थानपर भी सौन्दर्यकी प्रशंसा करनेवाले मिल जायेंगे, इस बातकी कदापि आशा न थी। परन्तु कर्मकी रेख जो न कराये वही थोड़ा है। अतएव मिल गये यहाँ भी रूपके प्यासे मतवाले।

सभापति महोदय बड़े धनी, विद्वान्, सरूप और परोपकारी विख्यात थे। कपड़ेका कारबार था। खासी आमदनी थी। मन्त्री महोदय भी समान-वयस्क ही थे। पीछे

मालूम हुआ, कि दोनों साथ ही स्कूलमें पढ़े और अबतक अभिन्न हृदय मित्र थे। ये बहुत ज्यादा धनी तो नहीं थे, पर हाँ, खुशहाल थे और सभा समितियोंमें जाकर व्याख्यान देना, परोपकारके कार्यमें सदा तैयार रहना आदि इनकी खूबियाँ थीं। सभापति महोदयका नाम बटुकनाथ तथा मंत्रीका दीनानाथ था।

दोनों ही कुछ देरतक मुझसे और बातें कर, विधवाश्रमके नियम बना वहाँसे चले गये। अब मैं अपनी कोठरीसे निकली। विचारा, एक बार यहाँ रहनेवाली विधवाओं और अबलाओंकी अवस्था तो देख आऊँ। प्रबन्धक महाशय बाहर बरान्देमें खड़े होकर कुछ सोच रहे थे। मैंने उनसे जाकर कहा—"जिन्हें पढ़ना होगा, उनसे एक बार परिचय कर लेना आवश्यक है।"

इस विधवाश्रममें पचीस तीस स्त्रियाँ होंगी। इनमें अधिकांश चौदह-पन्द्रहसे लेकर पचीस तीस वर्षकी अवस्थाके भीतरके ही होंगी। कितनी ही सुन्दर भी थीं। प्रबन्धक महाशयने कहा—"मैं अभी प्रबन्ध कर देता हूँ।"

इसके बाद उन्होंने दासीको बुलाकर कुछ इशारा किया। उसे समझा बुझाकर चले गये।

मैं उसी स्थानपर खड़ी रही। इतनेमें ही दासी एक युवतीको बुला लाई। सैकड़ोंमें एक ही होगी। बड़ी ही दयालु और विनम्र। मेरे पास आकर खड़ी हो गयी और

कुछ देरतक मेरी ओर देखती रही। इसके बाद बोली—"आप कहाँसे आयी हैं?"

मैंने उसे आदरसे अपने कमरेमें ले जाकर बैठाया। प्यारसे बोली—"कहाँसे बताऊँ, बम्बईसे दिल्ली आयी थी। यहाँ आकर आफतमें फँस गयी।"

इसका नाम 'रमा' था। रमा बोली—"अब यहाँ आरामसे रहोगी। पर यहाँके नियम बहुत कड़े हैं। अधिकारियोंकी आज्ञाओंपर विशेष ध्यान देना पड़ता है।"

मैंने कहा—"आप कितने दिनोंसे यहाँ हैं?"

रमा बोली—"लगभग दो मास हुए।" इसके बाद उससे और भी कितनी ही तरहकी बातें हुईं। घण्टे भरमें ही हम दोनों आपसमें खूब हिल-मिल गयीं। अब मैंने उसे अपनी सारी कथा सुनाते हुए पूछा—"आप किसी भले घरकी मालूम होती हैं। यहाँ कैसे आ पहुँचीं?"

रमाने कहा—"कैसेका क्या जवाब दूँ। दुर्भाग्य घसीट लाया। सच तो यह है कि मैं बचपनमें ही विधवा हो गयी थी। जिस समय मेरा विवाह हुआ, उस समय जानती भी न थी, कि विवाह क्या चीज़ होती है। इसके बाद विधवा कब हुई और विधवा किसे कहते हैं, यह भी नहीं मालूम हुआ। हाँ, इतना अवश्य देखा, कि मेरे हाथकी चूड़ियाँ तोड़ डाली गयीं, माथेका सिन्दूर पोंछ दिया गया। रंगी-चुंगी साड़ियाँ छीन ली गयीं। इतने व्रत-उपवास कराये जाने लगे, कि

मानो मुझे भूखों मारनेकी तैयारी हो रही थी। इसी तरह कई वर्ष बीत गये। अवस्था सयानी हो चली। अब सोचने लगी, कि यह कैसा जीवन है। मेरी माता परलोक सिधार गयी थीं। पिताने दूसरा विवाह कर लिया था। सौतेली माताकी ताड़ना और कटु वचन तथा दिन रातके घोर परिश्रम-के कारण मन और शरीर दोनों सदा व्याकुल रहते थे। घरमें किसीको भी स्नेहभाव न था, मानो मैं कोई निरर्थक पदार्थ होऊँ! बहुत क्या कहती हूँ, मन मारना पड़ता था, कभी घरसे बाहर पैर निकालनेकी इच्छा न थी, परन्तु दुर्भाग्य जब उदय होता है, तब वह मनुष्यको सब तरहसे लाचार बना डालता है। मैं क्या जानती थी, कि मेरा घर त्यागनेकी इच्छा हो या न हो, घरवाले ही मुझे निकालनेके लिए तैयार हो जायँगे।

"सूर्य ग्रहणका पर्व आ पहुँचा था। सबने इस पुण्य-अवसरपर काशी जाकर गंगा स्नानकी तैयारी की। पिताने मुझे भी चलनेके लिये कहा। मैं आरम्भसे ही भीड़ भाड़से बहुत डरती थी। अतएव मैंने इनकार कर दिया। इसपर पिता माता दोनोंने ही बहुत सी गालियाँ दीं, मुझे धर्महीन और दुराचारिणी बनाया। लाचार, मैं जानेके लिये तैयार हो गयी।

"ओह! उस दिन काशीमें कितनी भीड़ थी, मैं क्या बताऊँ। अस्सी घाटपर हमलोगोंका डेरा पड़ा। हमलोग

गंगा-स्नान करने गये। मैं, पिता और मेरी सौतेली माँ, तीनों साथ ही चले। पर यह क्या, अभी थोड़ी ही दूर आगे बढ़ी होऊँगी, कि पिता-माता दोनों ही गायब दिखाई दिये। उस जन-सागरमें, मैं अकेली ही दिखाई देने लगी। गंगा-स्नान एक ओर पड़ा रहा। मैं उनको खोजने लगी। शाम हो गयी; पर किसीका पता न लगा। धीरे-धीरे भीड़ शान्त हो गयी; पर मैं रूप-यौवनको साथ लिये उन्हें चारों ओर खोजती फिरने लगी।

"पासमें एक पैसा नहीं, तनपर केवल एक साड़ी दिन, भरकी भूखी प्यासी और थकी—मारे थकावटके शरीर चूर-चूर हो गया। शाम तक जब कोई न मिला, तब गंगा किनारे जा बैठी और अपना कर्तव्य सोचने लगी। धीरे-धीरे रात हो गयी। भय मालूम होने लगा। मैं उन्मादिनीकी भाँति एक ओरको चल पड़ी। भूखके मारे प्राण आकुल हो रहे थे; पर न जाने क्यों गंगागर्भमें आत्मसमर्पण कर देनेकी इच्छा न होती थी। बहन! सच तो यह है, कि यदि उस दिन डूब मरी होती, तो कहीं अच्छा होता। आज ये दिन क्यों देखने पड़ते।

"पर मर न सकी। उस समय यही खयाल हुआ, कि भीड़में सङ्ग छूट गया। पर अब जो विचारती हूँ, तो स्पष्ट मालूम होता है, कि काशीमें मुझे त्यागकर पिता माताने मेरी जवाबदेहीसे अपनी जान बचायी। खैर, मैं किसी तरह

शहरकी ओर चली। अभी थोड़ी ही दूर आगे बढ़ी होऊँगी, कि एक वृद्धा मिल गयी। उससे मैंने स्टेशनकी राह पूछी। मेरा गाँव रेलवे स्टेशनके बहुत ही निकट था। घरका पता ठिकाना, मुझे मालूम था। विचारा, भीख माँगकर अपने गाँव पहुँच जाऊँगी।

"वृद्धाने सरसे पैरतक मुझे अच्छी तरह देखा। देखकर बोली—'इतनी रातमें अकेली स्टेशन कैसे पहुँचोगी?' इसके बाद उसने काशीके गुण्डोंका इतना उपद्रव सुनाया, कि अन्तरात्मा काँप उठा। सब कहकर बोली—मैं तो एक गरीब औरत हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो चली चलो। कुछ खिला दूँगी, रातभर पड़ी रहना। सबेरे जहाँ इच्छा हो चली जाना।

"मैं गुण्डोंके भयसे काँप उठी थी। अब तो देखती हूँ, कि उन प्रत्यक्ष गुण्डोंसे ये सज्जनताके ढोंग धारण करनेवाले गुण्डे और भी भयानक हैं। पर दुर्भाग्य और अज्ञान दोनोंने ही सहारा दिया। मैं उस वृद्धाके साथ चली। राहमें उसने मेरी सारी पारिवारिक स्थिति पूछ ली। संक्षेप यह कि वृद्धा एक पूरी दुर्दान्त दानवी थी। रातमें उसने कुछ मिठाई खिलाकर मुझे सोनेके लिये एक कोठरीमें चटाई बिछा दी थी। मैं उसीपर जा पड़ी। रातभर चिन्तामें सड़कर सपने देखती रही। सबेरा होते ही मैं चलनेके लिये तैयार हो गयी। वृद्धासे आज्ञा लेने गयी। वृद्धा बोली—बेटी! चली तो हो,

पर क्या अब घरमें स्थान मिलेगा ? वे जान-बूझकर तुम्हें त्याग गये हैं और यदि मेरा कहना मानो तो अब उस दुखद घरमें जाकर क्या करोगी ? विधवा तो हो ही, कौन अपना बैठा है ! यहाँ सुखसे रहो। भगवानने जो रूप और शरीर दिया है, उससे खाने पहननेकी कमी न रह जायगी।

"वृद्धाकी बात सुनकर मन चिन्तामें जा पड़ा। क्या मैं वास्तवमें त्याग दी गयी हूँ। क्या अब घरमें स्थान न मिलेगा ? पर मन न माना। वृद्धा से बोली—'मैं जाऊँगी।'

"वृद्धाने कहा—अच्छा तो जाना, अब दिन भरकी भूखी प्यासी हो, ठहर जाओ, कुछ खा-पीकर जाना।"

"अभी उस वृद्धासे बातें कर ही रही थी, कि एक मोटा ताज़ा मुस्टण्डा मनुष्य वहाँ आ पहुँचा। वृद्धाने उसे पुकार-कर कहा—देख यह लड़की कल भीड़में छूट गयी है। घर जाना चाहती है।'

"वह धड़धड़ाता हुआ मेरे पास आ पहुँचा। मुझे देख-कर बोला—"चाचा, इसके तो बहुत रुपये मिलेंगे। साफ क्यों नहीं कह देतीं, कि यहाँ फँसी हुई चिड़िया उड़ नहीं सकती। इसके बाद मेरी ओर देखकर बोला—घर जाकर कौनसे लड्डू मिल जायेंगे। यहीं पड़ी रहो और कमाओ खाओ।' ज्यादा, चीचपड़ किया, तो मारे डण्डके पीठ तोड़ दूँगा।"

'बड़ी विपत्तिमें जान पड़ गयी। राजरानी। वहाँ पूरी

दुर्दशा हुई, कोठरीमें बन्द कर दी गयी। शपाशप बेंतोंकी मार पड़ी। कई दिनोंतक भूखी रखी गयी। जबर्दस्ती अत्याचार करनेको लोग तैयार हो गये। यहाँतक कि मेरी दुर्दशामें कोई कसर बाकी न रखी गयी। परन्तु एक दिन मौका मिल गया। बुढ़ी कुछ असावधान हो गयी। मैं वहाँसे भाग निकली। किसी तरह अपने [illegible] घर पहुँची। परन्तु जब जाकर देखा तो मेरे लिये अब घर और उस समाजका दरवाजा बन्द है। बहुत गिड़गिड़ायी, सब तरहसे अपनेको पवित्र प्रमाणित करनेकी चेष्टा की; परन्तु हाय! किसीने भी मेरी बातोंपर ध्यान न दिया। पिता-माताने स्पष्ट कह दिया कि अब तू इस घरमें रहने योग्य नहीं है। चार चार दिन बाहर रहनेवाली स्त्री क्या अब घरमें रखी जा सकती है?

"पिताने गाँवमें आकर सबसे कह दिया था कि मैं डूब गयी। मेरे लौटनेकी खबर तुरन्त चारों ओर फैल गयी, परन्तु कोई भी मुझे रखनेके लिये पितापर दबाव न डाल सका। सबने एक स्वरसे वही कहा जो मेरी सौतेली माता और पिता कहते थे। अतएव रातके समय ही वहाँसे निकाल बाहर की गयी। रातो रात चली अपने प्राण देने; परन्तु प्राण देना न हुआ। राहमें मिल गया एक साधु। वह मुझे बहुत कुछ आश्वासन देकर अपने साथ ले चला। अन्तमें मैं दिल्ली लायी गयी।

"साधु दिल्ली चावड़ी बाज़ारकी रहनेवाली सुन्दर नामकी एक प्रौढ़ाका मनुष्य था। उसके मनुष्य इसी वेषमें घूमा करते हैं। सुन्दरका यह काम ही है। वह कुलवधुओंको अपने इन दूतों द्वारा फँसाकर मँगवाती और उनसे व्यभिचार कराकर धन उपार्जन करती है। उसके मनुष्य गाँव गाँव घूमा करते हैं। यहाँ भी काशी जैसी ही दुर्दशा हुई। लाचार उस वृद्धाकी बात माननी ही पड़ी। समझ गयी, कि हर जगह धोखा ही है। परन्तु उस स्थानका अत्याचार सहन न होता था। इसलिये, एक दिन वहाँसे भी भाग खड़ी हुई। पर जहाँ जाती वहीं लोग मुझे देख अपनी पाप प्रवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये तैयार हो जाते थे। अन्तमें एक दिन यमुनातटपर एक भलेमानससे भेंट हो गयी। उससे रो-रोकर अपनी दुर्दशा मैंने कह सुनायी। वे मुझे यहाँ पहुँचा गये हैं। अब यहाँकी क्या लीला है, वह अपनी आँखों देख लेना।"

इतना कहकर रमा चुप हो गयी। रमाकी बातें सुनकर मालूम हो गया, कि यद्यपि इसने सभी बातें सत्य नहीं कही हैं, तथापि यह भी समाजके अत्याचारके कारण ही घरसे बाहर दिखाई दे रही है। यदि घरवाले रख लेते तो यह गली-गली मारी न फिरती और यहाँ आनेको भी इसे ज़रूरत नहीं पड़ती।

इसी समय भोजनका घंटा बजा। रातको आठ बजे सबको

भोजन मिलता था। रमा उठकर चली गयी, मैं भी भोजनकर अपनी कोठरीमें पड़ रही; परन्तु नींद कहाँसे आये। मनमें तो न जाने कितनी तरहके विचार पैदा हो रहे थे।

दस बजते ही सब कमरोंकी बत्तियाँ बुझा दी गयीं। रातके बारह बजे होंगे। मैं अबतक अपने बिछौनपर पड़ी पड़ी करवट बदल रही थी, कि एकाएक मेरी दृष्टि बाहरकी ओर जा पड़ी। मैंने देखा, कि एकके कमरेमें बत्ती फिर जल रही है। क्या कारण है, यह जाननेके लिये मैं बाहर निकलना ही चाहती थी, कि बत्ती फिर बुझ गयी। परन्तु आकाशमें तारे खूब छिटक रहे थे। मैंने दूरसे ही देखा, कि रमावाली कोठरीमेंसे प्रबन्धक महाशय दबे पाँव निकले और अपनी कोठरीकी ओर नीचे उतर गये।

मुझे कुछ दालमें काला मालूम हुआ। शायद इसी बातको लक्ष्यकर रमाने कहा था, कि यहाँकी क्या लीला है; सो अपनी आँखों देख लेना। एक दूसरी कोठरीमें भी कुछ उजियाला मालूम हुआ। मैं दबे-पाँव उसी ओर चल पड़ी। कहते लज्जा मालूम होती है, यहाँ भी एक सज्जन मौजूद थे। और आनन्दसे हँसी-दिल्लगी हो रही थी।

मालूम हो गया, कि यह स्थान भी पुरुषोंकी पापलीलाका अखाड़ा है। थोड़ी देर बाद वे महोदय भी उतरकर नीचे चले गये। दरवानने दरवाज़ा खोल दिया। पीछे मालूम हुआ, कि इन्होंने इस आश्रमके बनवानेमें बहुत बड़ी सहायता दी थी।

दूसरे दिन मैंने रमासे रात्रिकी अवस्था कही। पूछा, कि प्रबन्धक महाशय रात बारह बजे तुम्हारी कोठरीमें क्यों गये थे। उसने मेरा सवाल सुनकर सर झुका लिया। बोली— "अभी तो नयी चिड़िया फँसी हो। दो चार दिन रहीं तो आपही पता लग जायगा। मान जाओगी तो ठीक ही है, नहीं तो कोई न कोई अपवाद लगाकर निकाल बाहर की जाओगी।"

आश्रमका बाहरी प्रबन्ध बहुत सुन्दर था। सवेरा होते ही एक वृद्ध पण्डित आते और दो तीन घण्टेतक धर्म चर्चा कर जाते थे। हमलोगोंको रामायण और गीताका उपदेश सुना जाते थे। इसके बाद ही दस बजे भोजन और दो घण्टे विश्रामके बाद सब स्त्रियाँ अपने-अपने काममें लगा दी जाती थीं। बेल-बूटा कसीदा काढ़ना, जरदोज़ीकी चीजें तैयार करना तथा अन्य कितनी ही तरहके कार्य होते थे, जिन्हें बेचकर आश्रमकी आय बढ़ायी जाती थी। मुझे पढ़ानेका काम मिला था।

मैं मन ही मन सोचती, कि पुरुष जातिकी क्या दशा हो रही है। जब यहाँ रहकर भी व्यभिचारमय जीवन ही बिताना पड़ेगा, तो क्यों न स्वतन्त्र रहा जाये। परन्तु स्वतन्त्र रहनेकी दुर्दशा भी भोग चुकी थी। अतएव, निकल भागनेका भी साहस न होता था।

पढ़ाना तो एक ओर रहा। मेरे पास जितनी स्त्रियाँ

पढ़ने आती थीं, उनसे मैं उनके यहाँ आनेका कारण पहले पूछता था, कितनी तो संकोचसे कुछ कहना नहीं चाहती थीं, परन्तु मेरा व्यवहार इतना प्रेमपूर्ण था, कि धीरे-धीरे सबने अपनी रामलीला बखान कर दी।

कह नहीं सकती, कि उसमें सभी जबानबन्दियाँ सत्य थीं; परन्तु इतना अवश्य मालूम हो गया, कि सभी समाजकी सतायी और पुरुषों द्वारा इस पतित अवस्थामें पहुँचाया गया है। इनमें 'शान्ति' नामकी एक बहुत ही सुन्दर बालिका थी। इस समय उसकी अवस्था लगभग पन्द्रह वर्षके होगी। बड़ी ही नम्र और सुशीला और कानपुर जिलेके एक गाँवकी रहनेवाली थी। विवाहके थोड़े दिन बाद ही मालूम हो गया था, कि इसके कुलमें कोई स्त्री दुराचारिणी बनकर घरसे निकल गयी थी। इसीलिये इसके पतिने इसे त्याग दिया था। इसके मायकेमें इसका कोई अपना न था। मामाने विवाह कर दिया था। अतएव, जब पति-गृहसे निकाली गयी, तो उनलोगोंने रखना भी स्वीकार न किया। यह जवाबदेही कौन ले? बेचारी इधर-उधर मारी फिरती थी। गाँवके कई रिश्तेदारोंके यहाँ गयी, पर किसीने इसकी सुध न ली, न पतिपर ही दबाव डाला।

रोती-कलपती बेचारी दूसरे गाँवमें जा रही थी। भीख माँगकर खाती थी, कि एक मुसल्मान नवयुवककी दृष्टि इसपर पड़ गयी। वह इसके पीछे लगा। बोला—"बहुत दिनोंसे

तुमपर मेरी दृष्टि है। तुम्हारे घरकी सब दशा मुझे मालूम है। क्यों तकलीफ उठाती हो? चलो मैं तुमसे विवाह कर लूँगा।"

पर शान्ति न मानी। इसे आशा थी, कि दूसरे गाँववाले, इसके रिश्तेदार, इसे आश्रय देंगे। पर वहाँसे भी बिल्कुल ही निराश होना पड़ा। वह मुसलमान इसके पीछे लगा हुआ था। अतएव ज्योंही वहाँसे यह निराश होकर लौटी है, त्योंहीं मौक़ा पाकर वह युवक अपने साथियोंके सहारे इसे जबर्दस्ती उठा लाया। कुछ दिनोंतक तो यह उनके अत्याचारोंका शिकार बनी रही। वहाँसे किसी तरह जान बचाकर भागी तो कानपुरके पास ही ईसाइयोंके हाथमें जा पड़ी। अब एक समाजी इसे इस आश्रममें पहुँचा गये हैं।

वास्तवमें शान्ति बिलकुल निरपराधिनी थी। इसका कोई अपराध न था, यदि था तो उसका जो व्यभिचारिणी होकर अपने कुलको त्याग गयी थी। इसका अपराध और दण्ड किसे भोगना पड़े। जिस जातिको हजमकर जानेके लिये दो दो मगर मुँह फाड़े हों, उसकी ऐसी अवस्था! उसमें समाजका इतना अत्याचार! क्यों न हिन्दूजातिका ह्रास होता जाये।

शान्तिकी दशापर बहुत ही दुःख हुआ। उसीसे मालूम हुआ कि वहाँ भी उसे चैन नहीं है—मन्त्री महाशय इसका

अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये बहुत ही लालायित हो रहे हैं। इसे धमकियाँ भी दी जा चुकी हैं।

शान्ति रो-रोकर अपनी सब दुर्दशाओंका वर्णन कर गयी। बोली—"मेरी अब क्या दशा होगी, समझमें नहीं आता। पर अब पापमें न डूबूँगी। न जाने पूर्वजन्ममें कौनसा अपराध किया था, जिसका यह फल भोगना पड़ा है।"

मैंने कहा—"बहुत बढ़िया बात है, पर क्या पुरुष जातिसे बच सकोगी? इनसे बचनेका एकमात्र उपाय अपना जीवन विसर्जन कर देना है।"

शान्ति उठकर चली गयी। मैं उसकी अवस्थापर बहुत देर तक विचार करती रही। थोड़ी देर बाद शान्ति अपने साथ एक दूसरी युवतीको लेकर आ पहुँची। बोली—"ज़रा, इनकी कथा भी सुन लो, देखो हमलोगोंकी कैसी दुर्गति है।"

इस समय मेरे सामने जो युवती खड़ी थी, उसका हृष्ट पुष्ट शरीर उसके स्वास्थ्यका परिचय दे रहा था। गौर रंग बड़ी बड़ी आँखें और भरा हुआ चेहरा, बहुत ही अच्छा मालूम होता था। मैंने बड़े आदरसे उसे अपने पास बैठाया। वह कुछ संकुचित सी मेरे पास बैठ गयी। शान्तिने ही छेड़ छाड़कर उसका संकोच दूर किया। शान्तिने उसकी जीवन सम्बन्धी जो जो कहानी सुनायी, उसे सुन-

कर आश्चर्यमें आ जाना पड़ा। हाय! क्या वास्तवमें हिन्दू-समाज इतना आँखोंका अन्धा हो गया है। इसका नाम लीला था।

लीला दिल्लीके पासके एक गाँवकी ही रहनेवाली थी। लीला जिस मकानमें रहती थी, उसके पास ही एक मुसल्मानका मकान था। मकान-मालिक बाइस-तेईस वर्षका एक नवयुवक था। लीलाका विवाह हो चुका था। इस समय वह अपनी समाजमें ही थी। उस मुसलमान नवयुवकने पहले तो बहुत कुछ चेष्टा की, कि लीला प्रलोभनोंमें पड़कर निकल आये। पर उन प्रलोभनोंका लीलापर कोई भी प्रभाव न पड़ा। लीलाका विवाह ग़रीब घरमें हुआ था। इसे अधिकांश कार्य अपने हाथोंही करने पड़ते थे। यहाँ तक कि कभी-कभी बाज़ारसे सौदा भी स्वयं ही लाना पड़ता था। एक दिन सन्ध्याके समय लीलाका पति जब घरमें न था, तब उसकी सामने किरासिन तेल लानेके लिये उसे भेजा। बग़लमें ही मुसलमानकी दुकान थी। लीला उसकी चालों और विचारोंसे बिल्कुल ही अपरिचित थी।

बेचारी ग्राम-बालिका छल-छिद्रोंको क्या जाने। यह तो समझती थी, कि बगलके मकानका रहनेवाला क्या उसे धोखा दे सकता है?

ज्योंहीं लीला उसकी दूकानमें तेल लाने गयी है, त्यों ही दूकानदार चिल्ला उठा—"इस लड़कीने बधनेका पानी पी

लिया है।" वहाँ बैठे दो-चार उसके संगी साथियोंने भी यही हल्ला मचा दिया। लीलाको तो काठ मार गया। वह कुछ समझ ही न सकी, कि इसका क्या मतलब है। क्षण भरमें गाँवभरमें खबर फैल गयी, कि लीलाने मुसल्मानके घड़ेका पानी पी लिया है। उन्हें चिल्लाते सुन लीला अपने घरमें चली गयी थी। कुछ मनुष्योंने तुरन्त ही यह समाचार उसकी सासको कह सुनाया। सासने कुछ पूछ-ताछके बाद आज्ञा दी—"इस घरकी किसी चीज़में हाथ न लगाना।"

लीलाका दुर्भाग्य उदय हो गया। मुहल्लेका रहनेवाला मुसलमान क्या झूठ बोलेगा? सबने उसकी बातपर विश्वास कर लिया। लीलाके पति आये। उन्होंने सब समाचार सुन-कर, बाहर निकल जाँच-पड़ताल आरम्भ की। उस दूकानमें बैठनेवाले तथा दूकानदारके अन्य साथियोंने कसम खा खाकर यही बात कही। लीलाने बहुत कुछ कहा सुना और अपनी निरपराधिता बतायी, पर किसीने भी उसकी बातपर विश्वास न किया। उसी समय वह अपने घरसे निकाल दी गयी। उसके पतिने पत्रमें सब समाचार लिख, एक मनुष्य-को साथ दे, लीलाको उसके मायके भेज दिया।

पर पति-गृह जिसका छूट गया, उसे क्या कहीं आश्रय मिल सकता है, पत्र पढ़ते ही लीलाके धर्मभीरु पिता आग बबूला हो गये। कुछ देर बाद ही उसे अपने घरसे निकाल

दिया। बोले—"मैं अपने कुलको, धर्म-भ्रष्ट नहीं कर सकता।"

लीलाकी ससुरालका मनुष्य उसे पहुँचाकर चला गया था। अब लीला कहाँ जाये। उसने मनमें सोचा—स्त्रीका आश्रयस्थल पति है। एक बार फिर चलकर उनसे कहूँ, कि मैं निरपराध हूँ। वह फिर अपनी ससुरालकी ओर चल पड़ी।

वह मुसल्मान ताक लगाये हुए था। उसने रास्तेहीमें इसे आ घेरा। बोला—"मैंने वह चाल चली है, कि तुम्हें अब कोई हिन्दू ग्रहण ही नहीं कर सकता। लाख सर पटको, पर अब उस घरमें तुम्हारा गुज़र नहीं है।"

परन्तु लीलाको अपने पतिकी सहृदयतापर विश्वास था। वह एक बार फिर अपनी किस्मत आज़माया चाहती थी। अतएव सीधी अपनी ससुरालकी ओर चल पड़ी। वह मुसल्मान भी उसके पीछे था। गाँवमें जिस समय वह दुबारा लौटकर आयी है, उस समय सन्ध्या हो चली थी। उसी मुसल्मान युवकने आगे बढ़कर उसके पतिको लीलाके लौट आनेकी खबर दी। पतिने घरका द्वार बन्द कर लिया। लीलाके लाख रोने-चिल्लाने और गिड़गिड़ानेपर भी द्वार न खोला।

बेचारी रात भर उसी दरवाजेपर बैठी रोती रही। दो दिनकी भूखी-प्यासी किसीने मुट्ठी भर भोजन देनेकी भी

चेष्टा न की। गाँवके हिन्दू इस धर्मभ्रष्ट कन्याको आश्रय देना पाप समझते थे और मुसल्मान इसे अपनानेके लिये तैयार थे। वे कहते थे—यदि आपके कामकी चीज़ न हो तो हमलोग ग्रहण कर सकते हैं। हमारे दलमें तो एक औरतका आना दस मुसल्मानोंके मुकाबले है। पर इस औरतकी वजहसे आपसमें तनाजा और लड़ाई-झगड़ा नहीं किया चाहते।

रात भर लीला भूखी-प्यासी अपने पति-द्वारपर बैठी रही। सवेरा होते ही उसके पतिने दरवाजा खोला। लीलाने उसके चरणोंपर सर रखकर अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनी चाही। पर बदला मिला—पदाघात! लीला चबूतरे-से नीचे गिर पड़ी। सर फूट गया। रक्तकी धारा बहने लगी।

उस निरपराधिनी, पर वृथा ही कलंकित लीलाकी सुश्रूषा करनेके लिये कोई भी धर्म-भीरु तैयार न हुआ। अन्तमें उसी मुसलमानने, सबकी आँखोंके सामने, अपने बधनेका जल उसके सरपर डाल-डालकर रक्तकी धारा बन्द की। सारांश यह कि लीला उसके सुपुर्द कर दी गयी। सबके देखते देखते वह उसे बेसुध अवस्थामें अपने घर उठा ले गया, किसीने कोई आपत्ति न की। सबने यही कहा, कि ऐसी स्त्रियोंका हिन्दू समाजसे अलग होना ही अच्छा है।

यह घटना किसी तरह आर्य समाजके नेताओंके कानोंमें

जा पहुँची। उन सबने लीलाका उद्धार किया, और इस विधवाश्रममें पहुँचा गये।

शान्तिके मुँहसे लीलाकी इस विपत्तिका समाचार सुनकर मनमें बड़ा दुःख हुआ। इच्छा हुई कि मरकर इस धर्म-भीरु समाजको कोसूँ जो निरर्थक ही अपने पैरोंमें आप कुल्हाड़ी मार रहा है, धर्मके नामपर अधर्मका विस्तार कर रहा है।

इस समय भी लीलाकी आँखोंमें आँसू भर रहे थे। बोली—"सच कहती हूँ, बहिन! मैं और कुछ नहीं चाहती। यदि वे दासीकी भाँति भी मुझे रख लेते तो मैं अपना जीवन धन्य मानती, परन्तु वह भी आशा नहीं है।"

लीलाकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। वह घण्टों मेरे पास रोती रही। वह भी अत्याचारोंकी सतायी थी—परन्तु अपने और उसके हृदयमें आकाश-पातालका अन्तर दिखाई दिया।

कहाँतक बताऊँ—मैंने धीरे-धीरे उस विधवाश्रमकी रहनेवाली अपनी सभी संगिनियोंकी जीवनकथा सुनी। सुनते-सुनते मन ऊब उठा। कोई तो अपने पतिको वेश्यागामी और शराबी देख, मारे ईर्ष्यासे दग्ध हो, अन्य पुरुषोंके प्रलोभनोंमें आकर निकल आयी थी, जिसने थोड़े दिनोंतक आनन्द लेकर उसे त्याग दिया था। तो कोई वृद्ध पतिसे मनमुटाव होनेके कारण निकल पड़ी थी। कितनी

ही तो अपनेको एकदम निरपराध बतातीं और कहतीं कि गृह-कलहके कारण ही उन्हें घर त्यागना पड़ा था। पर चाहे किसी कारणसे भी हो, अपना घर छोड़कर सभी दुःखिता ही दिखाई देती थीं। जो हो, इन सबमें लीलाकी अवस्था अधिक शोचनीय थी। वह बराबर रोती और एकान्तमें पड़ी रहती थी। हम सब उसे समझाया करती थीं, पर किसी तरह उसके मनको प्रबोध न होता था।

एक दिन सवेरे ही आश्रममें बड़ा हल्ला मचा। पता लगानेपर मालूम हुआ, कि रातमें लीला भाग गयी। उसके भागनेका कोई कारण समझमें न आया। तीसरे दिन एकाएक समाचार मिला, कि लीलाकी लाश यमुनामें तैरती पायी गयी है। इसी दिन एक पत्र भी मेरे पास आ पहुँचा। पत्रपर मेरा ही नाम और 'विधवाश्रम' लिखा हुआ था। प्रबन्धक महाशय पत्र मेरे पास स्वयं लेकर आ पहुँचे। बोले—"आपके नाम यह किसका पत्र आया है ?"

मैंने कहा—"मेरा कोई अपना आदमी ऐसा नहीं है, जो पत्र भेजे। देखूँ !"

पत्र खोलकर देखा। लीलाका पत्र था। उसने लिखा था—"शायद इसी दिनके लिये पतिदेवने मुझे लिखना-पढ़ना सिखाया था। अतः आज एक पत्र उन्हें लिख, उनसे क्षमा माँग लेती हूँ और तुमसे कुछ स्नेह हो गया है, इसलिये, तुम्हें भी लिख देती हूँ, कि इतने दिनोंमें ही मुझे अच्छी तरह

अनुभव हो गया है, कि पति-गृहके सिवा स्त्रियाँ और किसी जगह भी, न तो सुरक्षित रह सकती हैं और न अत्याचारोंसे बच सकती हैं। आश्रमकी लीला देख ली है—बड़ी कठिनतासे बची हूँ। सर चला जाये, पर अपना सतीधर्म नहीं त्याग सकती। अतएव, आज अपना जीवन ही विसर्जन कर परलोकमें पतिकी राह देखती बैठी रहूँगी। मेरा कोई अपराध हो तो क्षमा करना।—लीला।"

पत्र पढ़कर मन व्याकुल हो उठा। मैं थी तो कठोर हृदया; पर इस समय आँखोंमें आँसू उमड़ पड़े। पत्र मेरे हाथसे गिर पड़ा। पण्डित दुर्गाशङ्करने पूछा—"किसका पत्र है?" पत्र उनके हाथमें उठाकर देते हुए मैंने कहा—"लीला, पुरुषोंकी पाप-लिप्साके कारण आज बलिदान चढ़ गयी। वह वास्तवमें सती थी।"

पण्डित दुर्गाशङ्करने पत्र उठाकर पढ़ा। बोले—"वृथा ही उसने प्राण दिये। मैं तो उसके लिये ऐसा प्रबन्ध कर रहा था, कि उसका सारा जीवन आनन्दसे बीतता और आश्रमको भी तीन हजार रुपयोंका फायदा होता।"

मैंने कहा—"तो आपने उससे कहा था?"

दुर्गाशङ्कर बोले—"अवश्य कहा था। पर वह तो पगली थी।" इतना कह वहाँसे चले गये। उनके चेहरेपर लीलाके लिये विषादकी एक रेखा भी न दिखाई दी। मैंने पुकारकर

कहा—"यदि आपने यह प्रबन्ध न किया होता तो लीला इस तरह यमुनागर्भमें न समा जाती।"

मैंने दुर्गाशङ्करसे पत्र लेना चाहा, परन्तु उन्होंने वह फिर न लौटाया। इससे आश्रमकी बदनामी होनेकी सम्भावना थी। पीछे मालूम हुआ, कि प्रबन्धक महाशयने दिल्लीके एक नामी सज्जनके आश्रयमें ही उसे रखना चाहा था। उन्होंने लीलाके लिये तीन हजार रुपये आश्रमको देनेका वचन भी दिया था। तीन हजार रुपयोंपर सौदा पक्का कर, वे सज्जन उस रातमें लीलासे मिलने भी आये थे। उनके जाने बाद ही लीला आश्रमसे निकल भागी। ये बातें रमासे मालूम हुईं। रमाने स्वयं प्रबन्धक महाशयसे सुना था। लीलाने भी पत्रमें इस घटनाका हवाला संक्षेपमें दिया था। अतएव, अविश्वासकी कोई बात नहीं थी। हा! संयमी और नारी-जातिपर कलङ्ककी गठरी लादनेवाली पुरुष जाति!! देखो, तुम्हारी पाप-लीला कैसा अनर्थ मचा रही है!

एक दो दिनोंतक तो आश्रममें लीलाकी कुछ चर्चा रही; पर इसके बाद ही सब शान्त हो गया। सब कार्य उसी तरह नियमित होने लगे। मानो कुछ हुआ ही न हो! पर मेरे हृदयपर गहरी चोट पहुँची। अपनी और लीलाकी जीवनीसे तुलना करने लगी। मालूम हो गया, वह वास्तवमें स्वर्गकी देवी थी, स्वर्गमें चली गयी और मैं—पापपथपर अग्रसर

हो चुकी थी। अतएव, जीवनविसर्ज्जनका साहस कहाँसे हो। नरकका कीड़ा नरकमें ही पड़ा रहा।

शोक और प्रसन्नता कभी स्थायी नहीं होते। धीरे-धीरे समयके साथ हो कम होते जाते हैं। अतएव, थोड़े ही दिनोंमें लीला मनसे भूलने लगीं। इधर आश्रमके कुछ हितचिन्तकोंकी दृष्टि मेरी ओर भी पलट पड़ी थी। सभा-पतिकी ओरसे कभी-कभी कुछ तोहफे आ जाते थे। एक दिन प्रबन्धक महाशयने कहा—"एक सज्जन विधवा-विवाहके अत्यन्त पक्षपाती हैं। उनकी इच्छा है, कि तुम उनसे विवा कर लो। तुम्हारी राय हो तो उनसे बातचीत करूँ। उस दिन लीलाने जो लीला दिखायी है, उससे भय ही मालूम होता है। कहीं होम करते साथ न जल जाये।"

मैंने पूछा—"आश्रमको कुछ लाभ होगा या नहीं।"

बोले—"अवश्य ही कुछ न कुछ होगा।"

मैंने कहा—"सोचकर उत्तर दूँगी।"

दूसरे दिन वे स्वयं प्रबन्धक महाशयके साथ आ पहुँचे। मुझसे कुछ बोले तो नहीं, पर घूम-फिरकर मुझे देख गये। प्रबन्धक महाशयने पीछे आकर कहा—"ये ही सज्जन हैं। बहुत धनी आदमी हैं। बड़े आरामसे रहोगी।" परन्तु न जाने क्यों, उसकी सूरत देखते ही मुझे ऐसा मालूम हो गया, कि यह घोर दुराचारी है। मैंने साफ इनकार कर दिया।

पर रूपवती और घरसे बाहर निकली हुई रमणियोंके

लिये 'आफतों' का अभाव नहीं रहता। दो-चार दिन भी न बीते होंगे, कि सभापति महोदयका पैगाम आ पहुँचा, साथमें तोहफेके रूपमें कुछ सामग्री भी। यह सामग्री यद्यपि फलके रूपमें थी; पर हटानेपर उसमें दस दसके दो नोट भी मिले।

समझ गयी, कि क्या मामला है। उसी दिन शामको सभापति महोदय भी आ पहुँचे। अन्य आश्रमवासिनियोंकी खोज खबर लेते हुए, मेरे कमरेके दरवाजेपर आ खड़े हुए। मुस्कुराते हुए बोले—"फल पहुँच गये थे न?"

मैंने उनका अभिनन्दन कर धन्यवाद देते हुए कहा—"फल ही नहीं, दक्षिणा भी।"

सभापति महाशय हँस पड़े। दाँत दिखाते हुए बोले—"ओह! वह कुछ नहीं। उसका हज़ार गुना आप जैसी सुरूपा और गुणी स्त्रियोंपर न्योछावर है। आपको किसी तरहका कष्ट न हो, इसपर ध्यान रखना हमलोगोंका कर्त्तव्य है।"

मैंने कहा—"इसके लिये अनेक धन्यवाद। मैं भी सब तरहसे आश्रमकी सेवाके लिये तैयार हूँ।"

सभापति महाशयने न जाने मनमें क्या समझा। कुछ साहस बढ़ गया। अपने मनका भाव छिपा न सके। सोचा होगा—एक तो विधवा, दूसरे घरसे निकली हुई। इससे मनोभाव छिपानेकी क्या ज़रूरत है।

परन्तु मैं मन ही मन सोचती थी, कि जब पाप ही कमाना है, तब पींजरेमें बन्द रहनेकी क्या आवश्यकता है। अतएव, तुरन्त ही मैंने कह दिया--"दुःख है, कि इस स्थानमें रहकर आपकी इच्छा पूरी नहीं कर सकती। यदि पाप ही अर्जन करना होता तो यहाँ क्यों आती ?"

सभापति महोदय रुष्ट हो गये। वे अपनेको आश्रमका अधिपति समझते थे। अपनी आश्रितासे ऐसा उत्तर पानेकी उन्हें कदापि आशा न थी। उन्हें तुरन्त क्रोध आ गया। रूक्ष दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए प्रबन्धक महाशयवाले कमरेमें चले गये।

मैंने देखा—आजतक मुझसे जैसा व्यवहार होता था, उसी दिनसे उसमें अन्तर पड़ने लगा। मैं स्वयं ही बहुत सावधान रहती थी। किसीको कुछ कहने या बोलनेका अवसर ही न देती थी, तथापि दूसरे ही दिनसे प्रबन्धक महाशय मेरे कामोंमें कुछ न कुछ नुख्स निकालकर झिड़कियाँ सुना ही जाते थे। कभी-कभी उनकी मुँहसे इस ढंगकी भी, बातें निकल पड़ती थी, कि यहाँ रहनेवालियोंको अधिकारियोंको सन्तुष्ट रखनेकी ओर ध्यान रखना चाहिये।

परन्तु मैं अपने हठपर दृढ़ थी। और इस पापाश्रयको त्याग देनेका अवसर ढूँढ़ रही थी। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था, कि इस आश्रममें रहकर, इसे कलंकित न करूँगी। सच तो यह है कि इतने ही दिनोंमें आश्रमसे ऊब उठी थी, पर अकेली निकल भागनेमें भय मालूम होता था।

इस आश्रमकी बगलमें ही अन्य भले आदमियोंका मकान था। मैं देखती थी कि जिस ओर मेरा कमरा था, उसके पीछेवाले एक मकानसे एक नवयुवक बराबर मेरी ओर देखा करता था। था भी वह सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट। उसकी चाल ढाल और उसके वस्त्र अलंकारोंसे ही मालूम होता था, कि किसी भले और धनी परिवारका लड़का है। यद्यपि उसकी दृष्टि कई दिनोंसे मुझपर थी और जब मौका मिलता तभी मेरी ओर देखा करता था; परन्तु आज तक मैंने कभी उसको आकर्षित करनेकी चेष्टा नहीं की। पर अब उसकी सहायताकी आवश्यकता आ पड़ी। अब मैंने भी उसकी दृष्टिका प्रतिदान देना आरम्भ किया। सोचा, इसीसे काम बन जायगा।

फिर तो यह अवस्था हो गयी, कि सोनेका बहानाकर मैं अपने कमरेका दरवाजा बन्द कर लेती। और खिड़कीमें जा बैठती। हम दोनोंमें ही इस तरह बिना किसी बाधाके प्रेमालाप और दृष्टिसंयोग होता था। अन्तमें इस आश्रमसे निकल भागनेका प्लाट तैयार हो गया। उसने कसम खाकर सारा जीवन मेरे साथ बितानेका वादा किया। निश्चय हुआ हमलोग हमेशा स्त्री-पुरुषकी तरह रहेंगे।

यद्यपि जबसे लीला भाग गयी थी, तबसे पहरेका इन्तिजाम कुछ बढ़ गया था, पर फिर भी अवसर मिल ही गया। एक दिन प्रबन्धक महाशय कहीं निमन्त्रणमें गये हुए थे,

पहरेदार भी असावधान हो पड़े। मैंने उस नवयुवक नवरत्नको भी सूचना देदी। वह मौकेपर तैयार था। मैं उससे जा मिली।

उसी समय हमलोग वहाँसे भागकर एक स्थानमें जा छिपे और दूसरे ही दिन पंजाब मेलसे कलकत्तेके लिये रवाना हो गये।

हाँ, आजसे मेरे जीवनकी धारा फिर पलटी। आजतक पुरुषोंकी चेष्टासे मैं घरसे निकाली गयी थी, आज मेरे साथ एक नवयुवकके पैर घरसे बाहर निकले। वास्तवमें युवक नवरत्नपर मेरे रूपका प्रभाव पड़ गया था। मैंने देखा था, कि आश्रममें रहनेके कारण होनीवाली अपनी दुर्दशाका हाल उससे कहती, तो उसकी आँखोंमें आँसू उमड़ पड़ते थे। वह अपने साथ कुछ रक़म भी लाया था। अतएव, हम दोनों सेकेण्ड क्लासमें सवार हो, कलकत्तेके लिये रवाना हो गये।

इसी सेकेण्ड क्लासमें एक परिवार और भी यात्रा कर रहा था। एक स्त्री और एक पुरुष। दोनों ही सुन्दर और धनी मालूम होते थे। विधाताने मानो यह जोड़ी मिला दी थी। इन्हें देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। अपनी पत्नी-की ओर उस पुरुषका प्रेमभाव और आदर देखकर मन न जाने कैसा हो उठा। अपनी सारी व्यतीत जीवन घटनायें याद हो आयीं। सोचा—हाय! मेरे भाग्यमें यह सुख बदा न था।

इस स्त्रीका नाम मनोरमा था। थोड़े ही देरमें हम दोनोंमें इतनी घनिष्ठता हो गयी, मानो वर्षोंका परिचय हो। वर्तमान भारतीय स्त्री-समाजके सम्बन्धमें भी कितनी ही बातें हुई मालूम हुईं। मनोरमाका बाहरी रूप जितना सुन्दर था, उसका हृदय भी उतना ही उदार था। बात छिपाना तो वह जानती ही नहीं थी। कहा—"जब मेरी अवस्था छोटी थी, तभी मैं विधवा हो गयी थी। पिताने मेरा दूसरा विवाह कर दिया।" उस नवयुवकको दिखाकर बोली—"ये ही मेरे पति हैं। इस समय ई० बी० आर० के असिस्टेंट इञ्जीनियर हैं। मेरा जीवन बड़े सुखसे बीतता है। नहीं तो आज मेरी क्या दुर्गति होती; कौन कह सकता है?"

सुनकर ध्यानमें आया—लक्ष्मी मौसीके कथनानुसार यदि मेरे पिताने भी मेरा फिरसे विवाह कर दिया होता, तो शायद मेरी जीवनधारा भी सुखकी लहरोंमें ही छिपी रहती।

मनोरमाने मेरा परिचय पूछा। ओह! झूठ बोलना पड़ा। नवरत्नको अपना पति बताया। अपनेको एक ऊँचे खानदानकी बालिका। रेलकी यह यात्रा मनोरमाकी संगतिके कारण इतनी मौजसे बीती, कि समय किधर कट गया, कुछ मालूम ही नहीं हुआ।

जिस समय पंजाब मेल कलकत्ते पहुँची है, उस समय मनोरमाने अपने मकानका पता लिखकर मुझे देते हुए कहा—"बहिन! भूल न जाना। कभी-कभी अवश्य मिलना।"

मनोरमा चली गयी। उस दिन तो हमलोग एक धर्म-शालामें आकर टिके। परन्तु धर्मशालामें अधिक दिन रहना सम्भव न था। अतएव, मकानकी खोज करना बहुत जरूरी था! नवरत्न भी कलकत्तेसे बिल्कुल अपरिचत था और मैं तो थी ही अबला। मैं इधर-उधरका हाल क्या जानूँ। अतएव, दूसरे दिन नवरत्न बाहर निकलकर पता लगा लाया और उसी दिन हमलोग धर्मशाला त्यागकर एक होटलमें पहुँचे।

होटलका नाम बतानेकी ज़रूरत नहीं है, पर रहा शान-दार। हमलोगोंको बड़े आरामकी जगह मिल गयी थी। किसी बातकी तकलीफ नहीं थी। हाँ, खर्च अलबत्ता ज्यादा पड़ता था।

कई बार पुरुषोंसे ठगी जा चुकी थी और इस बार तो एकदम दूसरे किनारेपर अपरिचित जगहमें आ पड़ी थी। अतएव, मैं सावधान थी। इसी लिये मैंने एक दिन नवरत्नसे पूछा भी, कि साथमें कितने रुपये हैं। उत्तरमें उसने कहा—"भरपूर हैं, चिन्ताकी कोई बात नहीं है।"

पाठकोंको स्मरण होगा, कि उस नक़ली महन्तकी कृपासे मेरे सब ज़ेवर ग़ायब हो चुके थे। शरीरपर सोनेका तार भी न था। मैंने नवरत्नसे कुछ जेवरोंके लिये कहा। दूसरे ही दिन वह मुझे साथ ले जाकर ज़ेवर दिलवा लाया। ज़ेवर उसने जिस ढंगके खरीदे, उससे ही मालूम होगया, रकम

थोड़ा है। दूसरे दिन नवरत्न जब स्नान करने गया तो मैंने बक्स खोलकर देखा, अब केवल चार हज़ार रुपये बचे थे।

कलकत्ता जैसी जगहमें वह इतनी रक़म कितने दिन चल सकती थी। रक़म धीरे धीरे घटने लगी, पर खर्च घटानेकी ओर नवरत्नका ध्यान न था। एक दिन मैंने कुछ ज़ोर देकर उससे कहा। उत्तर सुनकर मन सशंकित हो उठा। वह बोला—"तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो ? तुम्हारा उद्देश्य था, विधवाश्रमसे छुटकारा पाना और मेरा कलकत्ता देखना ! हम दोनोंकी ही इच्छा पूरी हो गयी है। फिर चिन्ता किस बातकी है ? मैंने और रुपये मँगवाये हैं।"

समझ गयी कि नवरत्न भी उड़ जानेवाली चिड़िया है। इसका कोई भरोसा नहीं है। बोली—"इधर आश्रमसे मैं ग़ायब हुई हूँ, उधर अपने मकानसे तुम। सब असली घटना समझ गये होंगे। अब कौन सा मुँह लेकर वहाँ जाओगे ? इससे अच्छा तो यही हो, कि इस चालसे यहीं रहो, कि हमारा-तुम्हारा जीवन एक साथ आनन्दसे बीते।"

नवरत्न ठठाकर हँस पड़ा। बोला—"इच्छा तो मेरी भी यही है, कि अब मेरा तुम्हारा बिछोह कभी न हो, पर मुँह दिखानेकी बात तुमने अच्छी कही। मुझे कोई कुपुत्र न कहेगा, सब तुम्हें ही दोष देंगे, कि कोई दुराचारिणी विधवाश्रममें आ पहुँची थी, जो भले घरके लड़केको फँसा ले गयी।"

सोचा—नवरत्नकी बात सोलहो आने सच है। विधवा या अबलाश्रमकी स्त्री ही क्यों, जब कभी प्रलोभनोंका फन्दा हेर फेरकर कोई पुरुष किसी स्त्रीको फँसा ले जाता है, तो अपराध उस स्त्रीका ही माना जाता है और वह पुरुष कुछ दिनोंतक उसके साथ पापवासना चरितार्थ कर जब घर लौटता है, तो सारा अपराध उस स्त्रीके सर लादकर स्वयं स्वच्छन्द घूमता है। समाज उस पुरुषको कोई दण्ड नहीं देता और वह अबला दूधकी मक्खीकी तरह समाजसे निकाल बाहर कर दी जाती है।

नवरत्नकी बात सुनकर भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। मैं चुप हो रही। भाग्यके भरोसे निश्चिन्त बैठनेके सिवा और उपाय ही क्या ?

फिर वे ही सामान—घूमना फिरना और आनन्द करना। रुपये पानीकी तरह बहाये जाते थे। मानो ये ठीकरे हों। इस बीच दो तीन बार मनोरमासे भी मिल आयी थी। एक दिन धर्मतल्लेमें एक थियेटर देखने गयी। बड़ा बढ़िया तमाशा था। हम दोनों ही आर्केस्ट्रामें आस-पास बैठे थे। हमलोगोंका ध्यान तमाशेपर था, कि एकाएक एक सज्जन आकर मेरी बग़लमें खाली पड़ी हुई कुर्सीपर बैठ गये। मैंने उस समय कुछ ध्यान भी न दिया। इसके बाद जब नव-रत्न एक बार पान लानेके लिये उठकर बाहर गये तो उन्होंने बड़े तपाकसे कहा—"वाह! आप यहाँ कैसे आ पहुँचीं ?"

मैं चौंक पड़ी। अकचकाकर उनकी ओर देखने लगी। कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। वे बोले—"आपका नाम रामरानी है न? एक बार बम्बईमें मिट्ठनलालके बागवाले जलसेमें आपसे मुलाकात हुई थी।"

ध्यानसे उनकी ओर देखा। इनका नाम किशनचन्द था। बोली—"हाँ, सैर करने आयी हूँ।"

बोले—"आपके साथ ये कौन हैं?"

मैंने कहा—"इनके साथ ही आयी हूँ।"

बोले—"वाह! आपको देखकर मन बहुत प्रसन्न हुआ। यहाँ कहाँ ठहरी हुई हैं?"

मैंने अपना पता बता दिया। उन्होंने पूछा—"इनके सामने आनेमें कोई आपत्ति तो नहीं है?"

मैंने कहा—"है तो ज़रूर!"

बोले—"मैं आपसे ज़रूर मिलूँगा। बताइये, कैसे भेंट होगी?"

मैंने कुछ सोचकर कहा—"आज नहीं बता सकती, अगले रविवारको इसी थियेटरमें बताऊँगी।"

बोले—"ज़रूर! मैं दिन गिनता रहूँगा।"

सुनकर हँसी आ गयी। इसी समय नवरत्न पान लेकर आ पहुँचे। हमलोग तमाशा देखने लगे। किशनचन्द मेरी बगलमें ही बैठे थे। आज थियेटरके बीचमें बायस्कोपका तमाशा भी था। बायस्कोप दिखानेके लिये अँधेरा हुआ ही

था, कि किशनचन्दने अँधेरेमें मेरे आंचलमें कुछ बाँध दिया। मैंने कनखियोंसे देखा, पर बोली कुछ नहीं। मुझे आभास मिल रहा था, कि नवरत्न जिस तरह अपने रुपये खर्च कर रहा है, उससे ज्यादा दिन इसका साथ नहीं निभ सकता। यह अवश्य किसी न किसी दिन मुझे छोड़कर चम्पत हो जायगा। अतएव, जो रकम एकत्र हो जाये, वही बहुत है।

तमाशा खतम हुआ। हमलोग उठ खड़े हुए। थोड़े ही दूर आगे बढ़े होंगे, कि पीछेसे आवाज़ आयो—"रविवारको जरूर! मैं दिन गिनता रहूँगा।"

सुनकर हँस पड़ी। नवरत्नने हँसनेका कारण पूछा। मैंने कहा—"कोई प्रेमी अपनी प्रेमिकाको सुनाकर कह रहा है, रविवारको ज़रूर आना।"

नवरत्नने कहा—"तुम्हें तो नहीं न्योता दे रहा है?"

मैंने एक बार टेढ़ी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। नवरत्नने कहा—"कोई तुम्हें भी न्योता देता हो तो मैं बुरा न मानूँगा; क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि जो अपने घरवालोंकी होकर न रह सकी, वह दूसरेकी होकर कब रह सकती है?"

इच्छा तो यही हुई, कि कह दूँ, कि तुमलोगोंका अत्याचार ही हमलोगोंको दुराचारका पथ दिखानेवाला है; परन्तु कहकर कोई लाभ न दिखाई दिया। चुप हो रही।

हम दोनों मोटर गाड़ीमें सवार होकर लौट आये। घर आकर देखा आँचलमें सौ रुपयेका नोट बँधा है। बात थी रविवारको उत्तर देनेकी; परन्तु बीचमें एक ऐसी घटना आ घटी, जिसने सारा प्रबन्ध बिगाड़ दिया।

नवरत्नके दिल्लीसे मेरे साथ भाग आनेकी बात प्रकट हो गयी थी। एक तो घटनाओंने प्रमाणित कर दिया था, कि नवरत्न मेरे साथ भाग आया है; दूसरे नवरत्नके किसी साथीने भी देख लिया था, कि वह मेरे साथ पंजाब मेलमें बैठा हुआ है। उसने जाकर नवरत्नके घर खबर दे दी। नवरत्नके बड़े भाई उसे खोजने निकले और कितनी ही जगह खोजते हुए अन्तमें कलकत्ते आ पहुँचे।

हमलोगोंको कलकत्तेमें रहते, लग भग दो मासके हो चुके थे। नवरत्नके पासके रुपये प्रायः खतम हो चुके थे। अब उसके चेहरेपर भी चिन्ताकी रेखा दिखाई देने लगी थी। यह निश्चय था, कि कुछ ही दिनोंमें वह मुझे छोड़कर भाग जायगा, कि इसी समय हम दोनों एक दिन ज्योंही शामके वक्त गाड़ीपर सवार हो, घूमने जाना चाहते थे, कि नवरत्नके भाईकी दृष्टि हम दोनोंपर जा पड़ी।

मेरे साथ नवरत्नको देखते ही वे तो आग बबूला हो उठे। लगे सड़कपर खड़े होकर ही छिनाली, हरामजादी आदि विशेषणोंसे मुझे सम्बोधन करने और अपने भाईको भी जी खोलकर गालियाँ देने लगे। राहमें फजीहतोंके खयालसे

हम दोनों ही भागकर होटलमें चले आये। पीछे पीछे नव-रत्नके भाई भी आ पहुँचे। बड़ा हल्ला मच गया। होटलके मैनेजर तथा कई नौकर-चाकर और कुछ मुसाफिर भी एकत्र हो गये। उनके सामने ही नवरत्नके भाईने मेरा विधवाश्रमसे भाग आना तथा अन्य कितनी ही सच्चा झूठी बातें कहीं। अन्तमें बोले—"यही हरामजादी इस लड़केको भगा लायी है। नहीं तो मेरा भाई तो देवता है—वह यह सब कुकर्म क्या जाने।"

नवरत्न तो मानो काठकी मूरत बन गया। सारी शेखी, समूचे वादे और वचन भूल गया। उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकला। सबके सामने मेरी इतनी फजीहती हो गयी—इतना अपमान हो गया; परन्तु नवरत्नने एक बात भी मेरे पक्षमें न कही। वहाँ उपस्थित पुरुषोंने भी नवरत्नके घरसे भागनेका सारा दोष मेरे माथे ही मढ़ दिया। पुरुष ऐसे ही होते हैं। रामूवाली झूठी बातके कारण जिस समय ससुरालमें मेरी दुर्दशा हो रही थी, उस समय तारानाथके मुँहसे भी आवाज न निकली थी। अन्तमें यहाँ तक नौबत आ पहुँची, कि मेरे सामान उन्होंने उठाकर कमरेके बाहर फेंक दिये। मेरे शरीरसे जेवर उतरवानेको तैयार हो गये।

मैंने देखा, बुरी मुसीबतमें फँसी हूँ। अबतक तो चुप थी। सोचा था क्यों बात बढ़ाऊँ, परन्तु अब चुप रहनेका

मौका न था। मैं गरज उठी। मैंने कहा—"बहुत सुन चुकी। अब यदि आपने एक शब्द भी अण्टसण्ट मुँहसे निकाला, तो अभी पुलिसमें खबर दूँगी, मैं कोई खानगी नहीं हूँ। आपका भाई विवाह करनेके वादेपर मुझे आश्रमसे ले आया है। आपने यदि जरा भी पैर आगे बढ़ाये तो पुलिस केस किये बिना न मानूँगी। आप अपने भाईसे पूछें—"उन्होंने क्या वचन दिया है?"

होटलका मैनेजर बोला—"आपके भाईने तो इनकी इज्जत ली है। जाने दीजिये, ऐसी औरतें जो न कह गुजरें, थोड़ा है। आप अपने भाईको लेकर जाइये।"

पुलिसके प्रपंचका भय कुछ काम कर गया। नवरत्नके भाई नवरत्नको साथ लेकर चले गये। इधर मैनेजरने अपने नौकरसे मेरा सारा सामान उठवाकर बाहर रखवा दिया। सामान ही क्या था, एक बक्स और बिछावन। ये सभी चीजें कलकत्तेमें ही खरीदी हुई थीं।

आह! हर जगह धोखा ही मिलता है! तो क्या स्त्रियोंको चाहे जो कुछ भी बीते, घरसे पैर निकालना ही न चाहिये? क्या पति-गृहके सिवा उनके लिये कोई दूसरा आश्रय ही नहीं है?

पासमें करीब सात्रासौ रुपये थे। पर जाऊँ कहाँ? फिर धर्मशालाकी ओर चली। अभी थोड़ी ही दूर गयी थी, कि किशनचन्दपर दृष्टि पड़ गयी। वे अपनी गाड़ीमें घूमने जा

रहे थे ; मैंने अपनी गाड़ी ज़ोरसे दौड़ाकर उनके पास पहुँचायी। ज्योंहीं दोनों गाड़ी अगल-बगल हुई, त्योंही मैंने उन्हें पुकारा। किशनबाबू चौंक पड़े। बोले—"यहाँ—इस आम रास्तेपर......!"

किशनबाबूने अपने कोचवानसे गाड़ी किसी गलीमें ले जानेके लिये कहा। मेरी गाड़ी भी उनके पीछे गलीमें गयी। यहाँ निराला देखकर किशनचन्द गाड़ीसे उतरकर मेरे पास आये। बोले—"आप कहाँ जा रही हैं ?"

मैंने कहा—"मेरे साथी तो दिल्ली चले गये। मैं बम्बई जाती हूँ, संयोगसे आपसे भेंट हो गयी।"

किशनचन्दने कहा—"वाह! ऐसा न होगा। आपने तो मुझसे मिलनेका वचन दिया था।"

मैं बोली—"ठीक है, पर इस समय कहीं रहनेका भी ठिकाना नहीं है। इस अपरिचित जगहमें अकेली कहाँ रहूँगी ?"

कुछ सोचकर उन्होंने कहा—"जगहकी क्या कमी है। आप मेरे बाग़में चली जायें।"

मैं बोली—"नहीं, मुझे जाने दीजिये, बम्बई आनेपर भेंट होगी।"

पर किशनचन्द न माना। किराया देकर मेरी गाड़ीको बिदा कर दिया। आप उतर पड़े और अपनी गाड़ीके

कोचवानसे बोले—"इन्हें बागमें ले जाओ। मैं पीछेसे मोटरगाड़ीपर आता हूँ।"

भगवानकी दया ही थी, जो किशनचन्दसे भेंट हो गयी, नहीं तो न जाने किन मुसीबतोंका सामना करना पड़ता।

किशनचन्दका सलकियामें बड़ा ही शानदार बगीचा था। आपका बाग देखने से ही मालूम हो गया, कि आप पर लक्ष्मीकी यथेष्ट कृपा है। थोड़ी ही देर बाद स्वयं किशनचन्द मोटरगाड़ीपर आ पहुँचे। तुरन्त मेरे आरामका समस्त प्रबन्ध कर दिया गया। मैंने मनही मन ईश्वरको धन्यवाद दिया।

किशनचन्दकी गाड़ी मुझे पहुँचाकर लौट गयी। जाते समय मैंने देखा, कि उन्होंने एक पत्र लिखकर कोचवानको दे दिया।

लगभग आठ बजे होंगे। मैं नहा-धोकर निश्चिन्त हो, किशनचन्दके साथ ही मैदानमें कुर्सीपर बैठी बातें कर रही थी, कि एकाएक दो मोटर-गाड़ियाँ आ पहुँचीं। एकमें कई नवयुवक तथा दूसरेमें कुछ स्त्रियाँ थीं। मैं उठकर भीतर जाना ही चाहती थी, कि किशनचन्दने हाथ पकड़कर बैठा लिया। बोले—"भागनेकी ज़रूरत नहीं है। यह अपनी मित्र-मण्डली है।" ज़रा कलकत्ते के बागोंका सैरका मज़ा देखो।"

उनकी मित्रमण्डली हँसती हुई आ पहुँची। उनमेंसे

एकको सम्बोधनकर किशनचन्दने कहा—"ऐसा मसाला कभी देखा था ?"

सबने मेरी तारीफ की। वे स्त्रियाँ भी इठलाती हुई आ पहुँचीं। ये सभी कलकत्तेकी वेश्याएँ थीं। गिनतीमें पाँच थीं। इनमें दो तो बङ्गालिनें थीं और तीन हिन्दुस्तानी। खाने-पीनेका सामान भी मोटरगाड़ीमें ही आ गया था। फिर तो खूब जमघट जमा। हँसी-दिल्लगीका बाजार गर्म हुआ। मुझे देख-देखकर सभी रूपकी प्रशंसा करने लगे। किशनचन्दने कहा—"यह बम्बईका तोहफा है। बङ्गालमें खोजे न मिलेगा। वे तो आज भागी जाती थीं, मैंने जबर्दस्ती रोक लिया है।"

भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त हो गाने-बजानेकी बारी आई। कहना नहीं होगा, कि इसमें भी मैंने बाज़ी मार ली। सब बोल उठे—"रूप-गुण दोनोंका ही जोड़ा मिल गया है।" रातके दो बजे तक खासी धूम रही। यहाँ एक नयी लीला और भी दिखाई दी। बोतलवासिनीका भी प्रचार दिखाई देने लगा। उन वेश्याओंने तो पी ही, साथ ही उन्हें लानेवाले भी इससे अलग न रहे। किशनचन्दके बहुत आग्रह करनेपर आज मुझे भी इसका गिलास मुँह-ओठोंसे लगाना पड़ा। परन्तु नाम-मात्रको; केवल उनकी बात रख दी। फिर तो वह धमाचौकड़ी मची, कि कुछ कहनेको नहीं। सब अपने शरीरकी सुध-बुध भूल गये।"

गानेके दो बजेतक यही अवस्था रही। इसके बाद सभी सो गये। कलकत्तेके बागोंके जलसेका जैसा नग्न दृश्य आज दिखाई दिया, वैसा बम्बईमें देखनेका अवसर कभी न मिला था।

दूसरे दिन रविवार था। आज भी दिन-भर हमलोग बागमें ही रहे। और सारा दिन हँसी, दिल्लगी, गाने-बजाने तथा आनन्दमें ही बीता।

किशनचन्द मेरे गानेसे बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"अभी बम्बई न जाना होगा, कुछ दिन यहीं रहिये।"

मैंने कहा—"बम्बईमें मेरे सब सामान पड़े हैं। यहाँ अधिक दिवस रहना ठीक न होगा।"

बोले—"रहने दीजिये। वहाँ भी कमी न रह जायगी।"

मैं तो ये बातें केवल अपनी शान बढ़ानेके लिये कह रही थी। वास्तवमें बम्बईमें मेरा अपना अब कुछ भी न था। यह तो आपलोग सभी जानते हैं। परन्तु याद रखिये, ज़रको ज़र खींचता है। यदि मैं किशनचन्दसे अपनी दुरवस्थाके सब समाचार कह देती, तो मैं अवश्य ही उनकी दृष्टिसे गिर जाती। मैंने कहा—"तो क्या, इस बागमें ही मुझे रहना होगा?"

बोले—"नहीं यह तो ठीक नहीं होगा। यहाँ कितने ही मनुष्योंका आवागमन बना रहता है। मैं इसका भी प्रबन्ध करता हूँ।"

तुरन्त ही उन्होंने अपने साथियोंमेंसे एकको बुलाया उसे सब बातें समझाते हुए कहा—"इनके लिये दो अच्छे कमरोंका प्रबन्ध होना चाहिये।"

उन आयी हुई वेश्याओंमें एकका नाम किशोरी था। किशोरी कुछ सम्पन्न सी मालूम होती थी। किशनचन्दके साथीने उसे बुलाकर सब बातें कहीं। वह बोली—"अच्छी बात है, मेरे मकानमें ही दो कमरे खाली हैं। किराया सत्तर रुपये महीना है। आप लोगोंकी इच्छा हो तो चलकर देख लीजिये।"

किशनचन्द राज़ी हो गये। मैं किशोरीवाली मोटरमें ही जा बैठी। उसके साथ उसके मकानपर गयी। दोनों कमरे देखे। पीछेसे किशनचन्द भी अपने साथीके साथ पहुंचे। कमरे पसन्द आ गये।

तीन तल्लेपर बहुत ही सुन्दर और हवादार कमरे थे। किशोरीका ही यह मकान था। कमरे दिखाती हुई बोली—"इस मकानमें आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। मैं बराबर आपकी मदद करूँगी।" सबकी यही राय हुइ कि यही कमरे ले लिये जायें। वही हुआ। मैं तो कठपुतलीकी भाँति यह सब लीला देखती और अपने भाग्यको सोचती जाती थी।

मेरे सब सामान बागसे आ गये। परन्तु उन दो दो कमरोंमें वे थोड़ेसे सामान मानो मेरी हँसी उड़ा रहे थे।

किशनचन्दसे इसी लिये मैंने कहा—"मेरे पास तो यहाँ सामान नहीं है, ये दो दो कमरे किस काममें आयेंगे ?"

बोले—"यह कलकत्ता है। घण्टे भरके भीतर दोनों कमरे सजा दिये जा सकते हैं, पर मुझे डर है, कि कहीं आप कल ही भागनेके लिये न तैयार हो जायें।"

मैंने कहा—"भागनेकी इच्छा तो थी, पर अब तो आप-लोगोंके फन्देमें आ फँसी हूँ।"

किशनचन्द मेरे सामान रखवाकर अपने उसी साथीके साथ चले गये। वास्तवमें दो घण्टेके भीतर ही बड़े बड़े आइने, खूबसूरत आल्मारियाँ, गद्दी, तकिया, जरूरी बरतन, तस्वीरें, पलंग आदि सारे सामान आ गये। इन सामानों-से दोनों कमरे सजा दिये गये। दो तीन घण्टोंमें ही उन कमरोंका काया पलट हो गया। एक बढ़िया हारमोनियम भी आ गया। किशनचन्दने स्वयं खड़े होकर सारा प्रबन्ध कर दिया—"बोले अब तो राज़ी हुई ?"

मैंने कहा—"मैं नाराज़ कब थी ?"

किशनचन्दने मेरे हाथमें दो सौ रुपये देते हुए कहा—"किशोरी सब तरहसे आपकी सहायता करेगी। अब आप कुछ दिनोंतक यहाँ आनन्द करें और कलकत्ते की मौज लें। मैं अब जाता हूँ, दो घण्टे बाद आऊँगा।"

इतना कह, किशनचन्द अपने उस साथीको लेकर चले गये। मैं गद्दीपर जा बैठी। सोचने लगी—"किस्मत कैसे-

कैसे रंग ला रहा है। सारी जीवनघटना थियेटरका एक तमाशासी मालूम होने लगी, जिसमें क्षण क्षणपर दृश्य बदला करते हैं।"

बारहवाँ परिच्छेद

रमणियोंका वेश्याजीवन।

ओह! क्या थी और क्या हो गयी! भाग्यचक्रकी गतिने किस अवस्थासे कहाँ पहुँचा दिया! कलकत्ते आकर वेश्यावृत्तिमें पड़कर, वेश्याजीवन बितानेको बाध्य हुई। सोचा था, नवीनके साथ स्त्री-पुरुषकी भाँति जीवन बिता दूँगी, पर उसमें भी बाधा आ पड़ी। कर्मकी रेख!

परन्तु किशनचन्द था तबियतदार आदमी। उसने मेरे सुखके सभी साधन एकत्र कर दिये। मेरी अभिलषित बनी जिन्दगी। एक दिन बात ही बातमें उसने कहा—"जब क-लकत्ते आ पहुँची हो, तो यहाँका ढंग सीखो। यही उम्र है, इस उम्रमें कुछ कमा रक्खोगी तो पीछे काम देगा। नहीं तो पुरुष जाति बड़ी स्वार्थिन होती है। जहाँ अवस्था ढली, फिर कोई पूछेगा भी नहीं।"

मैंने उसकी सहृदयता और उपदेशके लिये उसे अनेक धन्यवाद दिये। उसने इस वेश्याजीवनके गुप्त रहस्योंकी बहुत सी बातें बताईं। बोली—"धन ही हमारा मूल मन्त्र है, पुरुषोंसे रकम वसूल कर घर भरना ही हम लोगोंका उद्देश्य है।—चाहे इसमें कितना भी छल-छिद्र काममें लाना पड़े

इसमें नहीं चूकना।" धीरे धीरे कितनों ही ने मुझे अपना मूलमंत्र सिखाना आरम्भ किया : शहर सिखाये कोतवाली। कुछ तो किशोरीके संगके कारण और कुछ अपने ऊपर बीती घटनाओं द्वारा मैं इस व्यवसायके रहस्यको सीखने लगी।

किशनचन्द मुझे बहुत मानने लगे। धीरे-धीरे शराब और मेरी संगतिमें उनका अधःपतन आरम्भ हुआ। रोज ही बाग-बगीचोंकी सैर होने लगी। नित्य ही नये जलसे होने लगे, जिनमें किशनचन्द और उनके साथी सम्मिलित होते। खूब शराब पी जाती और मनमाना अत्याचार होता था। इधर दिल्लीमें जैसी दुरवस्थामें मैं जा पड़ी थी, उससे अपने विषयमें मुझे चिन्ता होने लगी थी; परन्तु किशनचन्द क्या मिल गया, मानो सोनेकी चिड़िया मेरे हाथ लग गयी। मैं जो कुछ कहती, किशनचन्द वही करते। जो राह लगाती; उसीपर चलते थे। अब काम-काजपर उनका ध्यान न था। वे चाहते थे केवल आनन्द। इस आनन्दमें कार-बार खराब होता जाता था। इधर मेरी संगतिमें धन खूब स्वाहा होता था। इतना ही नहीं, उनके दोस्त भी सब अपना घर भरनेवाले ही मिले थे। यदि किशनचन्दको मैं कभी समझाती तो उनपर इन बातोंका प्रभाव न पड़ता था। उन्हें तो चाहिये थी शराब और मैं।

इधर किशनचन्दका एक अधःपतन और भी हुआ। अब उन्होंने मेरी संगतिके कारण रात्रिमें घर रहना बिलकुल

ही त्याग दिया। वह रातभर मेरे यहाँ ही पड़े रहने लगे। यद्यपि मेरा अभी इतना अधःपतन नहीं हुआ था, कि उनका रातभर मेरे यहाँ रहना मुझे बुरा मालूम हो; तथापि उनके गृहमें कलह खूब ही बढ़ गयी थी। किशनचन्दपर एक तो दुराचारका भूत सवार था; उसकी साथ छोड़ रही थी; दूसरे मेरी संगतिके कारण जब उन्होंने रातमें घरमें रहना त्याग दिया, तो स्त्री-पुरुषमें कलहकी मात्रा भी खूब बढ़ गयी। इस कलहने धीरे-धीरे भीषण रूप धारण करना आरम्भ किया। किशनचन्दकी प्रकृति खराब होती चली। अब उन्होंने बातके बदले अपनी स्त्रीपर हाथ उठाना आरम्भ कर दिया। किशनचन्द मुझे कितना मानते थे, इसका सबसे जबर्दस्त प्रमाण यह है, कि अपने घरकी, परिवारवालोंकी और अपनी स्त्रीकी सभी बातें और कार्रवाइयाँ कह जाते थे। वे अपनी गद्दीमें अवश्य जाते और नामके लिये कार-बार भी देखते थे, पर वास्तवमें कारबारमें उनका जी न लगता था।

किशनचन्दका ज्यों-ज्यों अधःपतन होता गया, त्यों त्यों मेरी उन्नति होती गयी। मेरे घरमें धन भी खूब आने लगा, और बाग-बगीचा और दस मनुष्योंके सामने जानेके कारण मेरे रूप और गानेकी ख्याति भी बढ़ने लगी। मुझे कितनी जगह नाच-मुजरेकी बुलाहट आने लगी। पर किशनचन्दसे ही फुर्सत नहीं मिलती थी, जाऊँ कैसे।

मैं एक तरहसे किशनचन्दकी नौकर वश्या हो रही थी। किसी दूसरेकी सेवा बजा ही नहीं सकती थी।

एक दिन दो पहरका समय था। किशोरी खा-पीकर मेरे कमरेमें बैठी हुई थी। आज मैं पहले जैसी नहीं थी। मेरा समय बदल गया था। किशोरी बोली—"अब बम्बईकी याद नहीं आती?"

मैंने कहा—"याद तो जरूर आती है, पर जाऊँ कैसे, देखती तो हो, दम मारनेकी फुर्सत मिलती है?"

किशोरीने कहा—"पर मुझे तो रंग अच्छे नहीं मालूम होते। किशनचन्द बाबू अब ज्यादा दिन तुम्हारा खर्च नहीं चला सकते। अभीसे कोई दूसरा बन्दोबस्त कर लो, नहीं तो पीछे पछताओगी।"

मैंने कहा—"देखा जायगा। अभीसे कौन अपना माथा खराब करे।"

किशोरी चुप हो रही। लगभग तीन मासके और भी किशनचन्दके साथ बड़ी मौजसे बीते। इसके बाद ही एकाएक एक दिन रातमें किशनचन्द न आये। मैं चिन्तामें जा पड़ी। दूसरे दिन तीसरे पहर उनके दोस्तोंमेंसे एक मेरे यहाँ आ पहुँचा। इसका नाम सोहनलाल था। यह उनका सबसे अधिक प्रियपात्र, पर उतना ही स्वार्थी था। इसने अपना प्रेम और सेवाभाव दिखा-दिखाकर उन्हें अपनी मुट्ठीमें कर लिया था।

सोहनलालने भीतर आते ही कहा—"राजरानी ! आज तो गज़ब हो गया।"

मैं चौंक पड़ी। बोली—"क्या हुआ ?"

सोहनलालने कहा—"और क्या होगा, तुमलोगोंकी संगतिका जो नतीजा होना है, वही हुआ ! तुमने बेचारे किशनचन्दको अपने जालमें ऐसा फँसाया, कि उसने अपनी स्त्रीका मुँह देखना त्याग दिया। रोज़ मार-पीट लड़ाई झगड़ा हुआ करता था। अन्तमें परसों रातमें वह अपने ज़ेवर और जो नक़द मिल सका, ले लेकर एक बदमाशके साथ मुँह काला कर गयी। इस घटनाका प्रभाव किशनचन्दपर ऐसा पड़ा, कि वे भी कहीं चल दिये। अब तक पता नहीं है। चारों ओर खोज हो रही है। क्या किया जाय, कुछ समझमें नहीं आता।"

बातकी बातमें यह समाचार उस मकानमें फैल गया। किशोरी वहीं बैठी सुन रही थी। उसने हल्ला मचा दिया। उस मकानकी रहनेवाली सभी वेश्याएँ आ-आकर मुझसे पूछती थीं और उदास मुँह बनाकर चली जाती थीं, मानो मेरे प्रेमीकी इस दुर्दशापर उनके मनमें बहुत कष्ट पहुँचा हो; पर मैंने अपने कानों सुना, कि अपने कमरेमें जाकर वे मुझे गालियाँ देतीं और कहती थीं, कि कैसी बदमाश वेश्या है, कि पति-पत्नीमें झगड़ा करा उस घरका ही नाश कर दिया।

परन्तु किशनचन्दकी इस दुरवस्थापर मुझे आन्तरिक दुःख था। यद्यपि मैं दुर्भाग्यवश इस पथपर आ पड़ी थी, तथापि कभी पति-पत्नीमें वियोग न कराया चाहती थी। किशनचन्दको मैंने कितनी ही बार समझाया भी था; परन्तु उनपर जो नशेका भूत सवार था, वह कोई बात सुनने-समझने ही न देता था।

मैंने सोहनलालसे पूछा—"पर किशनबाबू आखिर कहाँ चले जायँगे?"

सोहनलालने कहा—"क्या बताऊँ, अब जाता हूँ। कुछ पता लगा, तो खबर दूँगा। इस शहरमें यदि वे रहते तो तुम्हारे पास अवश्य आते।"

आज वास्तवमें मेरी आँखोंमें दुःखके आँसू उमड़ पड़े। सोहनलालके चले जानेपर घण्टों बैठकर रोती रही। वास्तवमें किशनचन्द मुझे बहुत प्यार करता था।

कई दिवस बीत गये। किशनचन्द कहाँ चले गये, कुछ पता न लगा। सोहनलाल नित्य आता, घण्टों मेरे पास बैठता और मेरा मन बहलानेकी चेष्टा करता था। धीरे-धीरे वह अपना मेरे यहाँ आना-जाना बढ़ाने लगा। मेरी हर तरहसे खातिर करनेके लिये तैयार रहने लगा।

किशनचन्दको गायब हुए कई दिवस बीत चुके थे। यद्यपि सोहनलाल नित्य प्रति आता था, पर मेरा मन कुछ चंचलसा हो उठा था। आज फिर दो पहरके समय मेरे

कमरेमें किशोरी तथा कुछ अन्य वेश्याएँ बैठी हुई थीं। एकाएक किशोरी बोल उठी—"तुम तो रोकर पागल हो जाओगी! अरे यह वेश्याजीवन है! इसमें कितने ही किशनचन्द मिलेंगे। इस तरह अपने शरीरको मिट्टीमें मिलानेसे क्या लाभ! ऐसा ही था तो घरसे बाहर पैर न निकालने थे।"

मैं चुप हो रही। हाय! वेश्याजीवन ऐसा ही स्वार्थपूर्ण है। जिसने मेरे लिये अपना सर्वस्व बिगाड़ दिया; मेरे ही कारण जिसकी सजी-सजायी गृहस्थी चौपट हो गयी, उसके लिये कुछ दिन आँसू बहानेकी भी जरूरत नहीं है।

किशोरीने कहा—"आज पन्द्रह दिनोंसे तुम्हारी अवस्था देख रही हूँ। याद रखो, हमलोग वेश्या हैं। हमलोगोंका सम्बन्ध उतने ही समयका है, जबतक वह हमारे पास है या आता रहता है। इसी लिये हम सब सदा सोहागिन कहलाती हैं। तुम्हारा रूप-यौवन बना रहे, कद्रदानोंकी कमी न रहेगी।"

उस दिन शामको किशोरीने स्वयं आकर मेरी चोटी की, स्नान कराकर वस्त्र बदलवाये। इतनेमें शाम हो गयी। एकाएक मैंने देखा कि मोहनलाल आ पहुँचा। आज मोहनलाल अकेला न था। उसके साथ ही एक और भी पुरुष था। शरीरसे था तो पुष्ट, पर अवस्था पचास वर्षसे

कमकी न होगी। दाढ़ी-मूँछ सफेद हो गयी थीं। पर ठाठ-बाट और सजावटमें अल्प नवयुवकोंको भी मात करते थे। हाथमें हीरेकी बहुमूल्य अंगूठी और घड़ीके साथ बड़े-बड़े मोतियोंकी बहुमूल्य चेन झूल रही थी।

ये आकर बैठे ही थे, कि किशोरीने इशारेसे मुझे बुलाया। बुलाकर कहा—"यह यहाँके जौहरी बाजारका सरदार और बहुत धनी है। ऐसा न हो, कि तुम किशनचन्द्के खयालमें इसकी खातिर न करो। हमेशा याद रखना राजरानी—हमलोग वेश्या हैं। किसीसे प्रेम न करना, और नकली प्रेम दिखाकर अपना काम बनाना ही हमारे व्यवसायका गुर है। भूल जाओ किशनचन्द्को, इस तरह मनसे उतार दो, मानो तुम्हारी उसकी कभी भी जान-पहचान ही न थी।"

सुनकर लौट आयी। हाय! वेश्याजीवन! मनमें आग जल रही थी; पर होठोंपर हँसी लाकर उन वृद्ध महाशयके सामने कुछ दूर हटकर जा बैठी। वृद्धने मुस्कराकर कहा—"सोहनलालने आपकी बड़ी तारीफ की है। मैंने भी एक दिन चांदपाल घाटमें किशनचन्द्के साथ आपको देखा था।"

मैंने सोहनलालकी ओर देखा। समझ गयी, सोहनलाल किशनचन्द्का कैसा मित्र है। सोहनलालने बेहयाईका बुर्का ओढ़कर कहा—"क्या इतने दिनोंसे मुँह लटकाये बैठी रहती

हो। खाओ, पिओ, मौज करो। इस दुनियामें कोई सदा रहनेके लिये आया है?"

इतना कह, उसने स्वयं उठकर हार्मोनियम निकालकर मेरे सामने रख दिया। बोला—(वृद्धकी ओर दिखाकर) "बड़े भाग्यसे गोपालदासजी ऐसे आदमियोंके पैर कहीं पड़ते हैं। गाना सुनाओ।"

सोहनलालकी बेहयाई देखकर हँसी आ गयी। वृद्ध महाशयने कहा—"तुम तो इस तरह दूर हटकर बैठी हो मानो मुझसे डर लगता हो।"

इच्छा तो हुई—कह दूँ, "बात ऐसी ही है।" पर आ पड़ी थी उस धन्धेमें, जिसमें अच्छा बुरा देखनेकी जरूरत नहीं रहती। ख्याल रहता है अपनी स्वार्थपरतापर। अतएव, मैं कुछ और भी आगे सरक गयी। गोपालदासने कहा—"कुछ पान मँगाओ, गाना सुनाओ। अब तो सन्नाटा अच्छा नहीं लगता।"

इतना कहकर उसने दो रुपये जेबमें इस तरह निकालकर फेंक दिये, मानो रुपयोंकी उसे कोई ममता ही न हो। मैंने नौकरको पुकारकर एक रुपया पान लानेके लिये दे दिया। एक वहीं फर्शपर पड़ा रहा।

इसके बाद ही गोपालदासके आग्रहपर गाना सुनाना पड़ा। आज मेरा गाने-बजानेमें जी न लगता था, पर क्या करती? इस व्यवसायमें ही आ पड़ी थी, जिसमें इच्छा न रहनेपर भी कितने ही कार्य करने पड़ते हैं।

गाना-बजाना समाप्त हुआ। वृद्धने रुपये देकर जाते समय कहा—"अगर आप चाहें तो मैं आपको नौकर रख सकता हूँ। जैसा विचार हो, सोहनलालसे कहला दीजियेगा।"

कलकत्तेमें किसी रईसके पास नौकर रहनेवाली वेश्याओंका उनके समाजमें विशेष आदर रहता है; परन्तु न जाने क्यों, इस वेश्या-जीवनसे कुछ विरक्ति सी मालूम होने लगी थी। दूसरे "वृद्धस्य तरुणी भार्या" बननेकी इच्छा न थी, मैंने सोहनलालसे कह दिया। गोपालदास आये जायें, गाना सुनें, तुम्हारी दलाली तुम्हें मिलती जायगी; पर मैं अब किसीकी नौकर होकर न रहूँगी।

दलालीका शब्द सुनकर सोहनलालको कुछ बुरा मालूम हुआ। बोला—"तुमने भी खूब कहा। बीबी! अभी दलाली करनेकी ज़रूरत नहीं है। इतने दिन तुम्हारा साथ रहनेकी वजहसे एक प्रेम हो गया है, इसीलिये, तुम्हें तकलीफमें नहीं देखा जाता।"

मैंने कहा—"आपलोगोंका ही भरोसा है। इस अनजान जगहमें आपका ही तो सहारा है।" इतना कह मैं और भी सरककर उसके पास जा बैठी। बोली—"बुरा न मानिये। इस बुड्ढेकी यहाँ क्या जरूरत थी? इसे कहाँसे फँसा लाये थे?"

सोहनलालने कहा—"देखनेका ही बुड्ढा है, जितना ही

श्यकता थी। मैंने मन ही मन सोचा--"सोहनलाल उपयुक्त मनुष्य मालूम होता है। इससे काम बन जायगा।"

पाप मनुष्यको अपनी ही ओर खींचता है। एक पापको छिपानेके लिये दस पाप करनेकी भी कभी-कभी जरूरत आ पड़ती है। इस समय मेरे हृदयमें हलचल मच रही थी किशनलालका पतन और लीलाका आत्मत्याग, दोनों ही मुझे इस पापपथसे हटानेकी चेष्टा कर रहे थे; पर एक न जाने कौनसी शैतानी प्रवृत्ति भीतर घुसी हुई थी, जो मुझे हटने न देती थी। साफ बतलाऊँ—इस समय मेरे हृदयमें प्रतिहिंसावृत्ति जाग रही थी। जब कभी अपनी अवस्थापर विचार करती, अपनी इस दुर्दशाके कारण सोचती, तभी यह मालूम होता, कि पुरुषोंके अत्याचारके कारण ही मैं आज इस पापमय जीवन-पथपर चल रही हूँ। अतएव, जितने पुरुषोंका सत्यानाश कर सकूँ, उतना ही अच्छा है। किशनचन्दका शोक ज्यों ज्यों कम होता जाता था, त्यों त्यों यह प्रतिहिंसा वृत्ति अधिकसे अधिक उत्तेजित हो जाती थी, इस वेश्याजीवनमें ज्यों-ज्यों शारीरिक और मानसिक कष्टोंके पाले पड़ती थी, त्यों-त्यों इसकी ज्वाला और भी धधकती जाती थी!

सोहनलाल इस ज्वालामें घीका काम कर रहा था कभी-कभी उसके मुँहसे ऐसी बातें निकल पड़तीं, कि मन और भी चंचल हो जाता था और पहलेकी प्रवृत्ति बढ़ जाती

कुछ संकोचमें पड़ गये। पर वाह रे बुड्ढे! उसने बातकी बातमें सबको मिला लिया। बोला—"किसी दिन मैं भी जवान था।" इसके बाद तो इस तरह दिल्लगी-तफरीका बाजार गर्म हुआ, कि बुड्ढे-जवानमें कोई फर्क ही न रह गया। आज आमदनी भी अच्छी हुई।"

धीरे धीरे कलकत्तेमें मेरा नाम गूँजने लगा। जैसे ही प्रेमियोंकी भरमार रहने लगी, उसी तरह नाच-मुहफिलोंसे भी बुलाहटोंकी धूम मची रहने लगी। खासी आमदनी होने लगी। जो किशोरी मेरी अभिभाविका बनकर बैठी थी, जिसने सब तरहसे मुझे सहायता देनेका वचन दिया था, अब वही मेरी इतनी उन्नति देख दंग हो गयी! ईर्षासे दग्ध होने लगी। उस मकानकी रहनेवाली अन्य वेश्याओंका तो कहना ही क्या था।

कलकत्तेमें एक नामी मन्दिर है—नाम न लूँगी, एक भद्र महोदयका बनवाया हुआ है। उस मन्दिरमें जन्माष्टमीका उत्सव था। खासी सजावट थी और अनेकानेक प्रतिष्ठित पुरुष निमन्त्रित होकर आये थे। आज मेरी भी यहाँ बुलाहट थी। मैंने सोहनलालसे सुन रखा था, कि मन्दिरके निर्माता बहुत बड़े धनी हैं।

यथा समय मैं वहाँ जा पहुँची। सामने राधाकृष्णकी जुगल-जोड़ी विराज रही थी। सजावट और सुगन्धसे स्थान भरा हुआ था। अच्छे अच्छे रईस शानसे बैठे हुए थे।

दूसरे ही दिन लिलुएके बागमें मेरी बुलाहट हुई। वहाँ वे ही महापुरुष तथा दो तीन आदमी और भी बैठे थे। आज सोहनलाल भी मेरे साथ ही गया। बाग-बगीचोंमें अकेले जाते भय होता था। धन और रूप—दोनों ही पुरुष समाजकी तृष्णा बढ़ानेकी सामग्री हैं। इसीलिये सोहन-लालको भी साथ लेनी गयी थी। मुझे देखते ही एक मनुष्यने कहा—"महात्माजीको कल आपका गाना बहुत ही पसन्द आया था।" उन्होंने स्वयं हँसकर कहा—"आपके गानेने तो मन मोह लिया।"

मैंने उन्हें प्रणामकर धन्यवाद दिया। गाना आरम्भ हुआ। बीच-बीचमें हँसी-दिल्लगी भी होने लगी। गाना समाप्तकर मैं चुप बैठी थी, कि उसके एक मनुष्यने मुझे बुला-कर कहा—"तुमपर महात्माजीकी बड़ी कृपा हो गयी है। आज रातमें तुम जा न सकोगी, कल सवेरे भैरवी सुनाकर जाना।"

मैंने सोहनलालसे कहा। सुनकर बोला—"क्या हर्ज है, पवित्र हो जाओगी। इतने दिनका सारा पाप धुल जायगा।"

मनमें बड़ा क्षोभ हुआ। हाय! जिनके आदर्श और आदेशपर ही समाजके इतने मनुष्य चलते हैं, उनकी यह अवस्था!

मैंने कहा—"मुझे कुछ काम है, घरका प्रबन्ध भी नहीं कर आयी हूँ। अतएव, मुझे जाना ही होगा।"

बाजा बिल्कुल ही बन्द रखना पड़ता था। अन्य प्रेमी आकर बैठ भी न सकते थे।

पहले ही कह चुकी हूँ, कि मैं शराब पीने लगी थी। एक दिन नशेमें कुछ दूसरी ही धुन सवार हो गयी। अतएव, ज्यों ही वे आकर बैठे त्योंही बोतल और गिलास लेकर उनके पास जा बैठी। बोली—"आज मेरी बात रखनी ही होगी।" वे इनकार करने लगे और मैं उनके गले पड़ गयी। अन्तमें उनके गलेमें हाथ डाल, उनके मुँहसे मैंने गिलास लगा ही दिया। वे झिझककर उठ खड़े हुए—"राम राम कृष्ण कृष्ण" कहने लगे। मैंने उनकी यह लीला देखकर कहा—"आपके सामने मैं कई बार शराब पी चुकी हूँ, फिर आपको तो मेरा मुँह न देखना चाहिये था।" बोले—"वह कुछ दूसरी ही बात है।"

मैं इन्तजाम कर आयी थी। दूसरे कमरेमें बैठे हुए मेरे एक प्रेमीके कई साथी एकाएक उस कमरेमें आ पहुँचे, जिसमें ये काण्ड हो रहे थे। मैंने उन्हें दिखाकर कहा—"आपलोगोंके ऐसे ऐसे आचार्य भी इस बोतलवासिनीकी कृपासे नहीं बच सकते। हमलोगोंकी शक्तिको देखिये।" इतना कहकर मैंने उनका परिचय सबको बता दिया। उस दिनसे आचार्य महोदयने फिर अपना मुँह न दिखाया।

यद्यपि जिस पाप-व्यवसायमें मैं जा पड़ी थी, उसके लिये मेरा यह काम हानिकर था, परन्तु न जाने क्यों, उन्हें

मुहफिलमें मैंने ऐसे-ऐसे काम दिखाये, कि लोग दंग हो गये। हम वेश्याओंके पास जितने शस्त्र रहते हैं, उन सबका प्रयोग कर डाला। हीरालाल तो उसी दिनसे मुझपर रीझ गये। उनके इशारों और भावभंगियोंसे ही मैं समझ गयी, कि मेरा निशाना अचूक बैठा है।

मैं तो मुहफिल समाप्त होनेपर चली आयी ; पर हीरालालका मन अपने साथ लेती आयी। इसका प्रमाण भी पाँच-सात दिन बाद ही मिल गया। हीरालाल अपने एक दोस्तके साथ मेरे यहाँ आ पहुँचा। बहुत ही खूबसूरत जवान, देखकर तबीयत खुश हो गयी। मैंने आज उनकी हदसे ज्यादा खातिर की। अन्तमें बोली—"नयी दुलहिनको छोड़कर यहाँ कैसे आ पहुँचे ?"

हीरालाल हँस पड़ा। बोला—"विवाहकी मुहफिलमें तुम्हारी ये आँखें न्योता दे आयी थीं।"

मैंने फिर एक कटाक्षकर कहा—"तो आपने न्योता स्वीकार भी कर लिया। अच्छे दूल्हा बने थे।"

विशेष कहनेकी ज़रूरत नहीं है। हीरालाल तो फिर मुझपर इस तरह लट्टू हुआ, कि अपनी नवविवाहिता उसे अच्छी ही न लगने लगी। मैं भी यही चाहती थी।

विवाहमें मुहफिलका विशेषकर यही परिणाम होता है। लोग मुहफिल करते हैं अपनी कीर्त्ति बढ़ानेके लिये ; परन्तु फल विषमय होता है। कितने ही नवयुवक वेश्या-जालमें

उनका यह विवाह क्या हुआ था, और उनके घरमें हम वेश्याओंके चरण क्या पहुँचे थे, कि उनकी गृहस्थी कलहका भण्डार और अशान्तिका आगार बन गयी थी।

वृद्ध गिरिधरदासकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया था। बेचारे दमेके रोगी, शरीर जर्जर हो ही रहा था, इस चोटको वर्दाश्त न कर सके। शीघ्र ही सुरपुर पधार गये। अन्त-कालमें पिता-पुत्रमें भेंट भी न होने पायी। वृद्ध गिरिधरदास उधर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर रहे थे और उनका पुत्र मेरे यहाँ आनन्द कर रहा था। ऐसा ही होता है— हमलोगोंकी संगति जो न करे, वही थोड़ा है।

गिरिधरदास क्या मर गये, हीरालालका मानो सब बन्धन टूट गया। इधर मेरा भाग्य और भी जाग उठा। यह मेरे जीवनका सबसे उत्तम काल था। हीरालालके साथ मैंने जो जो आनन्द किये, वे शायद ही किसीको मुअस्सर हों! मैं पानमें मोतियोंका चूना खाती। जोड़ी गाड़ीपर नित्य शामको घूमने निकलती। एक मकानको कौन कहे, दो-दो किता मकान मेरे निजके तैयार हो गये। हीरालाल मानो मेरे लिये प्राण देनेको तैयार रहता था। परन्तु याद रखिये—मैं वेश्याओंके संसर्गमें जा पड़ी थी। किशोरीने मुझे सिखा दिया था, कि पैसा ही हमलोगोंका मूलमंत्र है— अतएव, इतनेपर भी जब कभी मौका पाती, तब अन्य प्रेमियोंकी सेवा करनेसे नहीं चूकती थी।

आराम भूल जाती। हाय! जो मनोरमा मुझे इतना मानती थी, जिसके यहाँ मैं बार-बार जाती थी, वह जब कहती, बहिन! एक दिन तुम्हारे यहाँ अवश्य चलूँगी, उस समय सर नीचा हो जाता था—यह कहनेका साहस न होता था, कि चलो, मेरे साथ ही चली चलो। चुप रह जाती थी। उस समय ध्यानमें आता था, मुझसे कहीं सुखी हैं वे, जो दिनभर मजदूरीकर अपना पेट पालती हैं, जिन्हें टूटी खाट-पर पड़नेपर भी पतिकी बाहोंका तकिया प्राप्त होता है!

हीरालाल ही कितना भी धनवान् क्यों न हो, हम-लोगोंकी सङ्गति उस धनको समाप्त कर देती है। यही अवस्था कुछ दिन बाद हीरालालकी भी हुई। पहले चन्द रुपये खर्च हुए, कारबार चौपट हुआ। धीरे धीरे देशमें खरीदी हुई जमीन्दारी बन्धक पड़ी; फिर बिकने लगी। जिसने जो पाया, उसपर हाथ साफ किया। हीरालाल दबते चले। मेरा खर्च वैसा ही लम्बा चौड़ा था। अब मुझसे और हीरा-लालसे कभी कभी खटपट भी होने लगी।

एक दिन तीसरे पहरको अभी मैं सोकर उठी थी, कि एकाएक एक सज्जन आ पहुँचे। बोले—"इसमें कोई कमरा खाली है?"

मैंने ध्यानसे देखा, आँखोंपर चस्मा चढ़ाये, एक तीस बत्तीस वर्षका मनुष्य सामने खड़ा है। बोली—"हैं; आपको कितने कमरे चाहिये?"

थोड़ी दया करनी पड़ेगी। मैं तो दिन रात यहाँ रह नहीं सकता। खर्च मैं दूँगा। आप एक मज्दूरन रख दें, जो इसकी सेवा सुश्रूषा करे।"

मैंने कहा—"इसे कहाँसे व्यवस्था देकर ले आये?"

सुनकर चौंक पड़े। बोले—"आप क्या मुझे पहचानती हैं?"

मैंने हँसकर कहा—"नहीं, मेरा आपका तो कोई परिचय नहीं है, पर आपको देखनेसे ऐसा मालूम होता है, कि आप कोई विशेष पण्डित हैं, इसीलिये ऐसा कहा था।"

पण्डितजी बोले—"व्यवस्था कौनसी दूँगा। माफ कीजियेगा—ये औरतें जो न कर डालें, थोड़ा है; इनमें सोलह गुना काम है, अच्छे अच्छे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि भ्रष्ट कर डालती हैं। और किसी तरह अपनी सन्तुष्टि करती हैं। मैं भी फँस गया हूँ। अब गले पड़ा ढोल बजाये सिद्ध! किसी तरह अपनी इज्ज़त तो बचानी ही पड़ेगी।"

जान गयी, कि पण्डितजीने किसी भले घरपर ही हाथ साफ किया है। हँसकर बोली—"आपलोग संयमके अवतार, समाजके कर्णधार, और आदर्शके पुतले हैं; आपपर ही जब प्रभाव पहुँच गया तो दूसरोंकी क्या गिनती है? पर यह औरत तो बहुत सीधी सादी मालूम होती है।"

पण्डितजीने कहा—"समय नहीं है, पीछे बातें करूँगा। ये पचास रुपये आप अपने पास रखिये, कुछ उसके पास भी हैं।"

थी। पति किसे कहते हैं? उससे क्या सुख होता है—मैं नहीं जानती। पिता-माताकी इकलौती सन्तान हूं। जब मैं विधवा हो गयी, तब पति-गृहसे किसीने भी न बुलाया। मैं अपने पिता-माताके पास ही रही। पिताकी अवस्था अधिक है। उन्होंने और कोई उपाय न देख, मेरा पुनर्विवाह कर देना चाहा। पर समाजवालोंने गहरी वाधा दी। मेरी जातिमें यह पण्डित बड़े ही विख्यात और पूज्य हो रहे हैं। इन्होंने व्यवस्था दी—हिन्दू धर्मके अनुसार विधवाविवाह हो नहीं सकता। कितने ही शास्त्रीय प्रमाण दिये। समाजका कोई युवक भी जातिच्युत होने तथा अपने सगे-सम्बन्धी और सम्पत्तिसे वञ्चित होनेके खयालसे तैयार न हुआ। इच्छा रहने पर भी समाजवालोंके अत्याचारके भयसे पिता लाचार हो गये।

"इस समयतक मैं बिल्कुल ही पढ़ी लिखी न थी। साधारण अक्षर-ज्ञान भर था। पिता कोई धनी पुरुष नहीं थे; अतएव, उन्हें मेरी चिन्ता आ पड़ी। उन्होंने मुझे पढ़ाना आरम्भ किया, परन्तु वे आफिसमें काम करते थे। अतएव, उन्हें समय ही न मिलता था। अतएव, इन पण्डित महोदयको ही नियुक्त किया। हिन्दी तो पितासे ही सीख चुकी थी, अब ये मुझे संस्कृतकी शिक्षा देने आये।

"बस, इसी स्थानसे मेरा दुर्भाग्य आरम्भ हुआ। यह पण्डित मेरे रूपपर प्रलुब्ध हो पड़ा। शिक्षाके बदले यह

"उपाय सोचा जाने लगा, पर वास्तवमें कोई उपाय न था। वह लेडी डाक्टर मेरी जातिमें और भी कई जगह आती जाती थी। कभी कोई जिक्र निकला होगा—उसने कह दिया। बात फैलने लगी। गरीब घरकी सन्तान, लोगोंको कुछ कहते क्या देर लगती है। कई जातिके मनुष्य इस घटनाकी सत्यता जाँचने आये।

"पिताको और कोई उपाय न सूझा। उन्होंने पण्डितजी-को बुलाकर पहले तो उनकी खूब भर्त्सना की। इसके बाद बोले—"आपकी व्यवस्थासे ही इसका विवाह न हो सका। अब आपने ही इसे भ्रष्ट किया है; अतएव आप इसके भरण-पोषण और अपने साथ रखनेका भार ग्रहण करते हैं या मैं पुलिसमें समाचार दूँ। आपने तो मेरे घरमें कलंक लगा ही दिया है, फिर आपका सम्मान मैं क्यों ज्योंका त्यों रहने दूँ?"

"पण्डितजी पिताके पैरोंपर गिर पड़े। मुझे आजीवन आरामसे रखनेका बचन दिया। मैं इनके सुपुर्द की गयी, और पिता-माता दोनों ही, वहाँसे गृहस्थी उजाड़ कहाँ चले गये, कोई खबर नहीं।

"आज दिनभर तो मैं एक धर्मशालामें पड़ी रही, अब यहाँ आयी हूँ। यही तो मेरी कथा है।"

इतना कह मालती फूट फूटकर रोने और अपने भाग्य-को कोसने लगी। मैंने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया।

पण्डितजी बोले--"पुनर्विवाह और विधवाविवाह शास्त्र विरुद्ध है। इसके पिताने अवश्य चेष्टा की, पर मैं कैसे व्यवस्था दे देता?"

मैंने रूखे स्वरमें कहा—"ठीक है कैसे व्यवस्था देते? यदि व्यवस्था दे दी होती तो आपकी इच्छा कैसे पूरी होती, और देशमें वेश्याओंकी गिनती जो घट जाती। पर महोदय! स्वयं पाप-पथपर अग्रसर हो पड़े, उस समय व्यवस्था और शास्त्रबचनका कुछ भी ख़याल न आया। धन्य आपलोगोंकी लीला है! धन्य आपलोगोंका समाज है। बहुत उत्तम कार्य कर रहे हैं! क्या आप कह सकते हैं, कि इसका सारा जीवन आपके साथ बीत जायगा। यदि आप इसे अपने साथ ही हमेशा रखना चाहते थे, तो इस वेश्या-गृहमें लानेकी क्या आवश्यकता थी?"

पण्डितजी कुछ संकुचित स्वरमें बोले—"स्त्रियोंका चरित्र देवता तो समझ ही नहीं सकते, मैं समझूँगा। सच तो यह है, कि इसने ऐसा जादू डाला, कि मैं सब धर्म-कर्म भूल गया। नहीं तो आज इन गलियोंकी ख़ाक क्यों छाननी पड़ती? और सबसे बड़ी बात है अपना-अपना भाग्य! यदि इसके भाग्यमें वेश्या-वृत्ति ही बदी है, तो मैं क्या कर सकता हूं और कोई दूसरा ही क्या कर सकता है।"

सुनकर बहुत बुरा मालूम हुआ। मैंने कहा—"आपने जिस तरह आज इसका जीवन पापपूर्ण और कष्टमय कर

हृदयपर विचित्र ही प्रभाव पहुँचा था। मैं सोचती थी, कि यही अवस्था बनी रही तो स्त्रियोंकी रक्षाका कोई भी उपाय न रह जायगा। पुरुष जाति प्रलोभनोंका फन्दा फेंक-फेंककर उसे फँसाती और छोड़ती चली जायगी। समाज ग्रहण न करेगा; विवाह हो न सकेगा—अन्तमें वेश्यावृत्ति ही उसके भरण-पोषणका साधन रह जायगा।

आज मैंने सन्ध्याका स्नानशृंगार आदि भी न किया। हीरालालकी जो अवस्था सुनी थी, उससे उसके आनेकी आशा न थी और अन्य प्रेमियोंपर इस समय मेरा ध्यान न था। हृदयमें हलचल मच रही थी और मन व्याकुल हो रहा था। सोहनलालने कुछ छेड़ा भी; परन्तु मैंने उसे फटकार दिया। मैं एक कोनेमें चुपचाप बैठ गयी।

परन्तु परमात्माकी न जाने क्या इच्छा थी, कि वह ऐसी ही स्त्रियोंसे मेरी मुलाकात करा देता था, जिनकी जीवन घटनाओंका मेरे हृदयपर विलक्षणही प्रभाव पहुँचता था। जो मेरा मन शान्त न रहने देता था अर्थात् मेरे किसी पापका ऐसा प्रायश्चित्त हो रहा था, कि मैं न तो गार्हस्थ्य जीवनमें शान्ति-सुखसे रह सकी और न इस वेश्या-जीवनमें ही।

थोड़ी ही देर बाद देखा, पण्डितजी मालतीवाले कमरेसे निकले, मैं अपने कमरेके दरवाजेपर खड़ी हो गयी। पण्डित जी उसी ओरसे निकले। मैंने प्रणामकर कहा—"क्या स्थिर किया? सुना है आपकी पहली स्त्रीका देहान्त हो गया है;

उसी दिनसे उक्त लेडी डाक्टरका इलाज आरम्भ हुआ। मालती अच्छी होने लगी, धीरे-धीरे उसका दर्द घटने लगा और आशा होने लगी, कि यह अच्छी हो जायगी। वह बहुत ही कमज़ोर हो रही थी। एक दिन रातमें गर्भपात हो गया, इससे कमजोरी और भी बढ़ गयी। उसी समय उस लेडी डाक्टरको फिर बुलाया। उसने औषधि दी। मालती बच गयी।

पण्डितजी दो तीन दिनतक तो बराबर आते रहे, पर इसके बाद उन्होंने आना एकदम त्याग दिया। सम्भव है इसका कारण इस लेडी डाक्टरकी असाध्य चिकित्सा हो। मैंने सोहनलालको उनके मकानपर भेजा, परन्तु सोहनलालने जो उत्तर लौटकर दिया, उसे सुनकर मन और भी विचलित हो उठा। वह बोला—"पण्डितजीका पता नहीं है, पूछनेपर मालूम हुआ, कि वह मकान छोड़कर कहीं चले गये। कहाँ गये, कुछ पता नहीं।"

मैंने मनही मन कहा—"यह तो होनेवाला ही था। मालतीसे आकर पण्डितजीका समाचार कहा। सुनकर बोली—"अब क्या होगा ? अब वेश्या-वृत्ति करनी होगी ?" इतना कह वह फूट फूटकर रोने लगी।

कितनी सरल हृदया बालिका थी, मेरे सामने ही वेश्यावृत्तिको दूषण देनेमें ज़रा भी संकोच न हुआ। मैंने समझा-बुझाकर उसे शान्त किया।

मैं तड़पा करती थी, उसी तरह यह भी मनोभावोंकी चपेटसे व्याकुल रहती होगी। परन्तु मुझमें और मालतीमें आकाश-पातालका अन्तर था। मालती एक बार भ्रष्टा हो जानेपर भी अथाह सागर हो रही थी।

कभी कभी तो मुझे सन्देह होता था, कि मुझे नीचा दिखानेके लिये मालती ऐसी चालें चल रही है—इस ढङ्गके आचरण दिखला रही है। मैंने उसकी परीक्षा करना स्थिर किया।

यद्यपि मालती सदा एकान्तमें रहती थी और परपुरुषोंके सामने बहुत कम आती थी ; परन्तु उस मकानमें आने-जाने वालोंमेंसे एककी दृष्टि उसपर पड़ ही गयी। यह था एक युवक। बड़ा ही सुन्दर और शौकीन! उसे जब मालूम हुआ कि मालती मेरी आश्रिता है, तो मेरे पास आ पहुँचा। मुझसे उसने अपनी इच्छा प्रकट की। यह कौन कह सकता था कि वेश्यागृहमें वेश्याके सिवा कोई दूसरा आ बसेगा।

युवक मुझे भी मालतीके उपयुक्त दिखाई दिया। मनमें आया—यदि इससे मालतीका विवाह हो जाता तो बहुत उत्तम होता। पूछ बैठी—"आपका विवाह हुआ है या नहीं ?"

युवक बोला—"विवाह हुआ था ; पर स्त्री मर गयी।"

मैंने कहा—"जिसपर आपकी दृष्टि पड़ी है, वह वेश्या नहीं है, एक भले घरकी लड़की है ; भाग्यदोषसे यहाँ आ पड़ी है।"

इतना कहते-कहते वह रो पड़ी। मैंने कुछ दबाव डालकर कहा—"नहीं, वेश्या नहीं बनाऊँगी। क्या मुझपर विश्वास नहीं है ? तेरे लिये वर खोज रही हूँ।"

बोली—"विश्वास है, पर जी डरता है। पण्डितजीने बुरी तरह धोखा दिया है-आज उन्होंने ही मेरी यह अवस्था की है।"

शाम होते ही वह युवक आ पहुँचा। मालतीने उसे देखा, उसने मालतीको। क्षण भरके लिये दोनोंकी आँखें मिलीं। मैंने उसे भीतर बुला लिया। मालती घूँघट खींचकर एक कोनेमें बैठ गयी। इस समय मैं बाहर चली आयी, और बाहरसे ही झाँककर देखने लगी कि क्या होता है।

युवकने बहुतसी बातें कहीं, अनेक प्रलोभन दिये ; पर मालती अपने स्थानसे न हिली। अब युवक अग्रसर हुआ। वह चाहता था, कि उसके पास जाकर उसका घूँघट हटा दे। मैं झपट कर भीतर जा पहुँची, डाँटकर उसे दूर भगा दिया। बोली—"पहलेही कह चुकी हूँ कि वह वेश्या नहीं है, उसके पास न जाना।"

युवक संकोच पूर्वक पीछे हट गया। मैंने कहा—"मेरे कमरेमें जाकर बैठिये, मैं आती हूँ।" मालतीके पास जाकर देखा—उसकी अवस्था विचित्र हो रही है, आँखें अंगारे ऐसी लाल हो रही हैं, जिनसे सावन भादोंकी झड़ी लगी हुई है।

बहुत तरहसे समझाया ; पर उसके रोनेका वेग कम न हुआ। उसी समय सब जेवर उतारकर उसने दे दिये।

जल्दी न उठी, तब मैं उसके दरवाजेपर जा पहुँची। बहुत धक्का दिया, चिल्लायी ; पर दरवाज़ा न खुला। हल्ला मचाया गया। उस मकानकी अन्य वेश्याएँ भी आकर चिल्ला-चिल्ला कर पुकारने लगीं, पर दरवाज़ा खुलना तो दूरकी बात है, कोई आवाज़ भी नहीं आयी।

मैं घबड़ा उठी। क्या मामला है—एक अशुभ आशंका मनमें पैदा हो गयी। अन्य वेश्याओंकी सलाहके अनुसार पुलिसको बुलाया; उसके सामनेही दरवाज़ा तोड़कर खोला गया। ओह! दरवाज़ा टूटते ही मैंने जो देखा, उससे काँप उठी। मैंने देखा कि एक कड़ीमें लगे हुए एक कड़ेसे अपनी धोती फँसा, उसे गलेमें डाल, मालतीने अपने जीवनकी आहुति दे दी है। वह सलोना चेहरा भयंकर हो उठा है, आँखें बाहर निकली पड़ी हैं---जीभ मुँहके बाहर लटक आयी है।

मैं काँप उठी। पुलिसकी दृष्टि मेरी ओर पलट गयी। उसे यह मालूम होते ही कि वह मेरी आश्रिता थी, मेरे कमरेमें ही रहती थी, एक दम यह विश्वास हो गया कि मेरे अत्याचारों के कारण इसने प्राण दिये हैं। कुशल इतनी ही हुई, कि प्राण देनेके पहले मालती एक पत्र लिखकर रख गयी थी। उसमें उसने स्पष्ट लिखा था—"बहन राजरानी! तुम्हारे उपकारोंसे मैं दबी हुई हूँ। ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह तुम्हें सुखी रक्खे। परन्तु अब अपना यह जीवन मैं निरर्थक समझती हूँ। समाजसे ही जब अलग हो गयी, तब अब जीवन रखकर

अद्भुत दृश्य दिखायी दिया। मैंने देखा कि वेही पण्डितजी जा रहे हैं, पुलिस उन्हें पकड़े हुए है। उनके पीछे कितने ही आदमियोंकी भीड़ है।

पण्डितजीकी यह अवस्था देखकर कुछ आश्चर्य हुआ। मैंने तुरन्त अपने नौकरको दौड़ाया। थोड़ी ही देरमें वह पता लगाकर लौट आया। बोला—"पण्डितजी एक बहुत बड़े आदमीके यहाँ शिक्षक नियुक्त हुए थे। उनकी कन्या-पर हाथ साफ़ किया था। उसीने इन्हें पुलिसमें भेज दिया है।"

सुनकर मनमें आया—जबतक सच्चरित्रता नहीं है, तबतक विद्या शोभा नहीं पाती। हाय! चरित्रदोषसे इतने बड़े विद्वानकी क्या अवस्था हो रही है।

इसी समय मनने ठोकर दी। बोला—यही बात स्त्रियों-के सम्बन्धमें भी है। उनका जीवन भी सच्चरित्रता और सन्तोषसे ही सुखी होता है। कामवासनाकी तृप्तिकी साधना ढूँढ़नेसे नहीं।

मन न जाने कैसा हो गया। लौट आयी। मनोरमाके यहाँ जाना न हुआ।

हरक़तें देखकर अवाक् रह गया! उस मकानकी अन्य वेश्याओंने आकर मुझे बहुत कुछ समझाना आरम्भ किया। झगड़ा तो बन्द हो गया; पर रात तकलीफमें ही कटी।

दूसरे ही दिन सबेरे मैं जलपानकर घरमें ताला लगा, मनोरमाके यहाँ चली गयी। सोहनलालसे कह दिया—"अब एक दो दिन मैं वहीं रहूँगी, तुम न आना।"

मनोरमाने बड़ी खातिर की। बोली—"तुम तो बहुत दिनोंपर आती हो, कभी एक दो दिन रहती भी नहीं। अपने घर भी नहीं बुलातीं।"

मैंने इतना ही उत्तर दिया,—"परमात्माकी ऐसी ही इच्छा है।"

आज मनोरमाके यहाँ एक स्त्री और भी दिखाई दी। अवस्था अन्दाज़न बीस-बाईस वर्षकी होगी। सुन्दर सुडौल कसा हुआ शरीर, चेहरेपर एक प्रकारका तेज दिखाई देता था। सौम्य और सन्तोषकी मानो साक्षात् मूर्त्ति थी। उसके शरीरपर न तो रंगीन और न बढ़िया ही साड़ी थी और न जेवरोंका भरमार ही। इसके बदले गलेमें रुद्राक्ष-की माला दिखाई देती थी। मनोरमासे इसके विषयमें पूछने-पर बोली—"यह मेरी मौसेरी बहिन है। तीन वर्ष हुए विधवा हो गयी है। अपने गाँवमें ही रहती है। सन्तान आदि कुछ नहीं है। पति सम्पत्ति भी नहीं छोड़ गये हैं। बेचारी किसी तरह दुःख-सुखसे अपने दिन काट लेती है।

इसका कोई मतलब नहीं कि सब किसीको करना चाहिये। हाँ, जो अपने मनको काबूमें न रख सकती हों, वे अवश्य कर लें।"

मैंने कहा--"पर आपकी अवस्था ही अभी कितनी है।"

कमलाने कहा--"अवस्था चाहे जितनी भी हो, पर मन शुद्ध हो गया है। रही कष्टकी बात, सो बहिन! सुख दुःख तो मान लेनेका है। मुझे कोई भी कष्ट नहीं है, और क्या पति रहनेपर कष्ट नहीं होता? यदि पति दुराचारी, दुर्व्यसनी मिल जाये तो कष्टोंकी अवधि नहीं रहती। तब एक बात जरूर है, तुम लोग जिसे महान् कष्ट समझती हो, अपने पतिदेवताकी शिक्षाके कारण, उस कष्टको मैं कुछ भी नहीं समझती, मैं तो समझती हूं कि अधिकांश विधवाएँ कामतृप्ति के लियेही दूसरा विवाह करती हैं। नहीं तो देशमें इतने काम पड़े हैं, कि उन्हें खानेकी कमी नहीं रह सकती।"

मैंने कहा--"पुरुष समाज जैसा दुराचारी हो रहा है, उनसे बचनेके लिये एक सहारेकी ज़रूरत रहती है।"

कमलाने हँसकर कहा--"बात तो ठीक है, पर जिन्हें आरम्भसे उत्तम शिक्षा मिली है, उनपर प्रलोभनोंका फन्दा काम नहीं कर सकता। वे अपनेको बचा लेती हैं। पर आजकल वैसी शिक्षा नहीं है। मैं विधवाविवाहकी विरोधनी नहीं हूँ, परन्तु संयममें जो आनन्द है, वह काम-तृप्तिमें नहीं है। बहिन! सच कहती हूँ (अपने

पा सकें और भारतीय नारी-समाजका संयममें सर ऊँचा कर सकें। बहन! नारियाँ संयमकी मूर्त्ति हैं—नारी जाति माता कहलानेका दावा रखती है। नारी-जातिमें देश और समाजमें हलचल मचा देनेकी शक्ति है। वह दुर्बल कहाँ है? दुर्बल, अबल आदि कह-कहकर पुरुषोंने उन्हें हमेशा दबा रखने और अपना स्वार्थसाधन करनेकी चेष्टा की है। भूल जाओ, इन बातोंको। यदि कोई ऐसा माईका लाल होता जो मेरी इच्छानुसार धन लगा सकता, तो मैं दिखा देती, कि नारी-जाति क्या चीज बन सकती है। पर पुरुष हैं—स्वार्थी। वे विधवाश्रम खोलेंगे तो उसमें भी अपना स्वार्थ देखकर उससे अलग नहीं रहना चाहेंगे। अबलाश्रम कीर्त्तिके लिये खुलवायेंगे तो स्वयं पदाधिकारी बनकर अपनी पापप्रवृत्ति चरितार्थ करनेकी चेष्टा करेंगे। इसी लिये आज नारी-जातिका उद्धार नहीं होने पाता।"

इतना कहती-कहती कमला उत्तेजित हो उठी। उसके चेहरेपर एक अद्भुत तेजसा दिखाई देने लगा। मैंने मनही मन उसे प्रणाम किया। विधवाश्रमकी अवस्था तो अपनी आँखों देख चुकी थी, और पुरुषोंके अत्याचारका मज़ा भी कम न मिला था।

कमला खड़ी होकर उसी कमरेमें इधर उधर टहलने लगी। मनोरमाने धीरेसे कहा—"इनकी यही दशा है, इसी लिये तो इनसे इस विषयमें बातें नहीं करती।"

संख्या बढ़ानेकी क्या ज़रूरत है। उनकी बात वेही समझती हैं। हम अनपढ़ स्त्रियाँ इतना क्या जानें।"

मैं मन ही मन सब समझती थी। कितनी ही बार मनने इसी ढँगकी चोट दी थी, कितनी बार हृदयने ऐसा ही सुझाया था, पर हाय! उस समय तो हृदयमें कुछ और ही आग जल रही थी। मैं चुपचाप बैठकर कुछ सोचने लगी। अपनी और कमलाकी अवस्थासे मिलान करने लगी। लाख रुपयेकी दस्तावेजकी बात याद आयी—क्यों क्रोध और मनकी ज्वालामें उसे जला दिया! मैं वास्तवमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हो सकती थी। पर अब क्या हो सकता था।

मनोरमाने बहुत कुछ कहा—कि एक दो दिन रह जाओ। पर इस समय मन व्याकुल हो रहा था। मैंने कहा—"फिर किसी दिन आऊँगी।"

इतना कह, मैं खड़ी हो गयी। घर आते ही देखा, तो हरिदासी बैठी है।

हरिदासी एक बंगालिन वेश्या थी। वह बाग़बाजारमें रहती थी; परन्तु थी बहुत भली। उस मकानकी एक वेश्या-से उसकी मित्रता थी। इसी बहाने कभी कभी आ जाया करती थी। वह जब आती, तब मुझसे मिले बिना न जाती थी। मैं थी उस मकानकी मालकिन। अतएव, मेरी इतनी खातिर अवश्य कर जाती थी। उसकी हँसमुख

भी बोली—"आज तो बड़ी धर्मात्मा बन गयी हो, पर शाम होते ही सारा धर्म-ज्ञान हवा हो जायगा।"

बोली—"धर्म-ज्ञान उस समय भी ग़ायब नहीं होता। पर जानती हो, नरकका कीड़ा नरकमें ही पड़ा रहता है। पर अब कहाँ जाऊँ। कहीं ठिकाना भी तो नहीं है। कहीं ठिकाना हो तो लात मारकर इस पापजीवनको त्याग दूँ। तुमने तो देखा नहीं है, ज़रा अपनी साथिनोंकी अवस्था देखो, तो पता लगे, कि किस तरह वे शरीरसे नरक भोग रही हैं; परन्तु कोई आश्रय नहीं है, जहाँ वे यह व्यवसाय त्यागकर जा सकें।"

मैंने कहा—"एक बार पहले भी तुमने ऐसी बातें कही थीं, पर दिखाया कभी भी नहीं। चलो, आज मैं तुम्हारे साथ ही चलूँगी। पर तुम्हारी रातकी आमदनी मारी जायगी।"

बोली-"आज छुट्टी ले लूँगी।"

मैं उसी समय तैयार हो गयी। वस्त्र वगैरह बदलनेकी इच्छा न थी, पर हरिदासीके आग्रहसे वह करना ही पड़ा। आज उसने अपनी इच्छासे मेरा शृंगार किया। बोली—"आज तुम्हें खूब सजाकर ले चलूँगी, और एक बढ़िया सा बाबू जुटा दूँगी।"

मैंने कहा—"पहलेसे ही धन्यवाद देती हूँ, पर हम-लोगोंको लोग अपने घरमें घुसने क्यों देंगे?"

बोले--"बहुत बढ़िया बात है। नौकरको साथ लेती जाओ, शराबियोंका वक्त है, कोई कुछ अन्याय न कर बैठे।"

हरिदासीने कहा--"अच्छा।" वे चले गये। हरिदासीने कहा--"इनके साथ मैं आरामसे हूँ। बहुत भले आदमी हैं। आमदनी तो ज्यादा नहीं होती, पर इन सब उपद्रवोंसे बची रहती हूं।"

मैंने कहा--"फिर यह ठाटबाट कैसे चलता है?"

बोली—"हमलोग वेश्या हैं। एकसे पेट नहीं भरता। इनके जानेके बाद कभी-कभी कुछ उपार्जन कर लिया करती हूँ।"

सुनकर मैं हँस पड़ी। मनमें आया—"यह सच्ची वेश्या है।"

हरिदासी, अपना नौकर ही नहीं, बल्कि एक और भी मनुष्य बाहरसे बुला, उसे कुछ समझाने बुझानेके बाद, उसके हाथमें चार रुपये दे, मुझे साथ लेकर बाहर निकली। पहले हमलोग बाग-बाज़ारकी ही वेश्याओंके मकानोंमें गये। सब जगह एक ही दशा, एक ही अवस्था थी। खासी धूमधाम मची हुई थी। कितनी ही खाली भी बैठी हुई थीं। उन्हें प्रेमी प्राप्त न हुए थे। उनमेंसे कईने बुलाया। हरिदासीने 'बम्बईकी वेश्या' कहकर मेरा परिचय दिया। मैंने जिन्हें खाली पाया, उनसे उनकी अवस्था पूछी। उत्तरमें जो सुना, उससे रोमांच हो आया। किसीने भी यह

गुजरी होऊँगो ; परन्तु कभी ध्यान न दिया। यहाँ मुझे वेश्या-जीवनका सबसे घृणित दृश्य दिखाई दिया। मैंने देखा, कितनी ही प्रौढ़ाएँ, युवतियाँ और लड़कियाँ मुँहपर पाउडर लगाये, प्रेमीकी आशामें कतार बाँधे खड़ी हैं, कोई सिगरेट पीती है, तो कोई बीड़ी। चेहरेपर लावण्यका तो नाम नहीं है। सुन्दरी भी कुरूपा ही दिखाई देती है। अपने चेहरेके इसी ऐबको छिपानेके लिये, ये पाउडर मले रहती हैं। दो दो आने पैसेके लिये ये अपना तन बेचनेके लिये तैयार हैं। हाय! वेश्या-जीवन!

हमलोगोंको वहाँ देखकर उनमेंसे एकने आगे बढ़कर पूछा—"आपलोग यहाँ क्यों आयी हैं?"

हरिदासीने कहा—"ये बम्बईकी रहनेवाली हैं। यहाँकी वेश्याओंको देखने निकली हैं।"

बोली—"मेरे साथ आइये। यहाँ बाहरसे क्या देखेंगी।"

वह हमलोगोंको साथ ले गयी। ओह! एक मकानमें घुसते ही दुर्गन्धसे अन्तर भी काँप उठा। उसने अपने एक मैले-कुचैले कमरेमें ले जाकर बैठाया। मैंने देखा, उस मकानमें कितनी ही इस ढंगकी वेश्याएँ भरी हैं। न बिछावनका ठिकाना है, न सजावट या सामानका। कितनेमें ही तो चटाई और ऐसी गद्दी दिखाई दीं, जिनपर पैर रखते संकोच हो। इनकी रहनेवालियाँ दो दो चार चार आनेपर

मैंने उनकी अवस्था पूछी। घरसे बाहर पैर निकालने-का कारण पूछा। प्रायः बहुतोंने यही कहा, कि पुरुष फँसा लाये और सतीत्व हरणकर चल दिये। अब इस वृत्तिके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। कितनीहोने कहा—"विलासी पति मिला था। ईर्षासे दग्ध हो निकल पड़ी। कितनीहीने कुटनियोंकी विचित्र लीलाओं द्वारा अपने निकलनेका समा-चार बताया। कुछ ऐसी भी मिलीं जो पुश्तदर पुश्तसे यही वृत्ति करती आ रही हैं।"

परन्तु हाय! किसीने भी यह नहीं कहा, कि इस जीवनमें वह सुखी है। कितनी ही तो आँखोंमें आँसू भर लायीं। बोलीं, इस जीवनसे मृत्यु कहीं बढ़िया है।

मैंने कहा—"तुमलोगोंके पास हज़ारोंकी सम्पत्ति है, फिर ऐसा क्यों?"

उनमेंसे एकने कहा—"नारीजाति सम्पत्ति नहीं चाहती, वह चाहती है प्रेम! वेश्या-जीवनमें प्रेम कहाँ मुअस्सर! यह तो छलका आगार है।"

उठकर चली आयी। मुझे कम अनुभव न था। तिसपर इन दो दिनोंमें जो देखा और सुना, उसने रही सही जीवन-ममता भी भुला दी। इस वेश्या-जीवनसे तो घोर विराग उत्पन्न कर दिया।

घर आकर अपना कर्त्तव्य स्थिर करने लगी। कमला-की बात रह रहकर याद आती थी। स्त्रियोंकी रक्षा योग्य एक

कार रखनेसे ही बात बिगड़ जायगी, धनगर्व, उपकारगर्व, सेवाभावके महत्वको दूर भगा देगा।

एक बात और भी खयालमें आयी—सोचा, अपना उससे कोई संसर्ग न रखूँ। थोड़ी रक़म निकाल लूँ। किसी तीर्थस्थानमें जाकर भगवद्भजन कर दिन काट दूँगी।

इसी समय ध्यानमें आया—क्यों न अपनी सारे जीवन की घटनाओंको लिख डालूँ। क्यों न अपने जीवनका अनुभव इन बहिनोंको जाननेका पथ प्रशस्त कर दूँ। आजतक मनोरमाको जिस तरह धोखा देती आयी हूँ, उसी तरह सच्ची बातें, अपनी सारी आत्मकथा लिख कर उसके पास भेज दूँ। वह भी देखे और पढ़नेवाले भी देखें, कि उनके अत्याचारोंका आज कितना भयङ्कर परिणाम हो रहा है।

मनने हामी भर ली। यही स्थिर हुआ कि अपनी सारी आत्मकथा तथा अधिकांश रुपये मनोरमाके पास भेज दूँ। वह जैसा चाहे कमलादेवीकी सहायतासे इस कार्यको करे और मैं थोड़ी सी रकम लेकर किसी तीर्थस्थानमें अपना यह पापमय जीवन व्यतीत कर दूँ।

उसी दिनसे मैं अपनी पापकथा लिखने बैठी। पद-पदपर यही इच्छा होती थी कि अपनी पाप-कथाको छिपाकर कुछ दूसरा ही लिखूँ। मैं हीं जानती हूं कि हृदयपर कितना दबाव डाल कर मैंने सारी सत्य घटनाएँ लिखी हैं। जिस समय यह आत्म-कथा लिख कर तैयार हो गयी, उस समय

अन्तर्य्यामी। हाय! मैं इस योग्य नहीं थी, कि तुम्हें अपने घर बुला सकूँ।

"सुनकर आश्चर्य करोगी—घृणा करोगी, मुझे कितना ही धिक्कारोगी-पर क्या करती? वैसा ही अवसर था। उस समय अपनेको छिपाना ही कर्त्तव्य था—पर आज-आज परमात्माकी दया हो गयी—अब अपना पाप छिपानेकी आवश्यकता नहीं है। इसी लिये, अपनी यह सच्ची आत्मकथा लिख कर भेजती हूँ—इसे छपा देना, जितनी इच्छा हो बँटवा देना, जिसमें मेरा पाप खूब राष्ट्र हो पड़े, जिसमें लोग देखें-समाज के अत्याचारका कैसा भीषण परिणाम होता है-और पापियोंकी कैसी अवस्था रहती है।

"हाँ, तो मैं वेश्या हूँ! तुमने एक वेश्याको ही अपनाया था, एक बारवनिताको ही अपनी बहिन बनाया था—एक व्यभिचारिणीको ही अपनी सखी कहा था। पर इसके लिये तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़ेगा। मैं सब तरहसे इसी लिये सावधान रहती थी, बचती रहती थी। परन्तु सच तो यह है, मनोरमे! कि तुम्हारी संगतिने मेरा बड़ा उपकार किया है—तुम्हारी संगिनीने एक वह आलोक दिखा दिया है जो शायद ही कभी देखनेको मिलता। यह तुम्हारी कमला है-कमलाके जीवनने मेरे हृदयपर अद्भुत ही प्रभाव जमाया है।

"हाँ, मैं पापिनी अवश्य हूं। पर अपनी इच्छासे पापपथ पर अग्रसर नहीं हुई थी। मेरी जीवनीकी प्रत्येक घटना तुम्हें

अधिकांश जीवन इसी वृत्तिमें बीता है, डंकेकी चोट कहती हूँ मृत्यु अच्छी है--यह जीवन नहीं अच्छा। इसीलिये केवल मेरा ही नहीं, सभी वेश्याओंका हृदय उस समय ईर्षासे दग्ध होने लगता है, जब उनकी कुलबधुओंपर दृष्टि पड़ती है, उनका आदर-सोहाग वे देखती हैं। हाय ! क्या वेश्याओंको यह प्रेम कभी मुअस्सर है।

"हो या न हो, पर पुरुष और समाजका मान रखने वाले ढोंगी--देशमें वेश्याओंको बढ़ा रहे हैं। ओह, यह अभागिनी भी उसीका शिकार है। पर बहन ! अब इस वृत्तिसे श्रद्धा हट गयी--श्रद्धा कभी भी न थी, जो कुछ था, काल चक्रका परिवर्त्तन, पर तुम्हारी कमलाके आदर्शने वह बचा-खुचा प्रलोभन भी हटाकर आँखोंकी बँधी पट्टी खोल दी, अब एक क्षण के लिये भी इस पथपर खड़े रहनेकी इच्छा नहीं है।

"तुम्हारी कमलाकी बहुत इच्छा एक संरक्षणगृह बनानेकी है। उनकी जैसी दृढ़ आत्माकी संचालिका और मिल भी नहीं सकती। उनकी इच्छा पूर्ण होनी चाहिये। इसीलिये आज अपनी यह पापकी कमाई भेज रही हूं। उन्हें दे देना और कह देना, इस अभागिनीका यह धन, वेश्या, विधवा, चाहे जैसी हो, नारी जातिके मंगल साधनमें लगा दें। यही मेरी प्रार्थना है, शायद इससे इस दुराचारिणीके पापका बोझा कुछ हलका हो ! शायद परमात्माके दरबारमें क्षमाभिक्षा मांगने योग्य हो सके।

मनोरमे ! अब विदा होती हूं--अब इस जीवनमें यह कल

कहती हैं—जब सब त्याग दिया तो अब इस पापी जीवनको रखनेकी ही क्या आवश्यकता है। अब भी रूप है—अब भी-यौवनकी छाया है—मनका कौन ठिकाना, कौन जानता है। कब फिसल पड़े।

स्वप्न उचटा। फिर देखा—दोनो ही कुछ देरके लिये गायब हो गयीं। सामने खड़ी थी, मेरी माता। मेरे पापों के लिये मुझे धिक्कार रही थी और जीवनकी ममताके लिये अफसोस करती थी। मेरे मनमें इस समय बड़ा कष्ट हो रहा था। कुछ बोलना चाहती थी पर आवाज न निकलती थी, इसी समय मैंने फिर देखा-लीला और मालती सामने आकर खड़ी हैं। दोनों हाथ फैलाकर मुझे बुला रही हैं, गङ्गाकी धारा दिखा रही हैं।

अब सहन न हो सका। नींद एकाएक उचट गयी। इसी समय बगलके कमरेकी घड़ीने टनाटन तीन बजाये। मेरा मास्तिष्क इस स्वप्नने विचलित कर दिया। सोचा—सच ही तो, शायद फिसल पड़ूँ।

निकल पड़ी उसी समय घरके बाहर, और दौड़ पड़ी गङ्गा तटकी ओर उस सदय ज्वार जोरों पर चढ़ा हुआ था। मानो पतित-पावनी दोनो बाहें फैलाकर मुझे गोदमें लेनेके लिये तैयार थीं। आह! यह अवसर भी क्या त्यागने योग्य था?